कैलादेवी सुमतिप्रसाद ग्रन्थमाला—पुष्प 5

महामंत्र णमोकार : वैज्ञानिक अन्वेषण

(कैलादेवी सुमतिप्रसाद ट्रस्ट द्वारा पुरस्कृत कृति)

यह कृति णमोकार मंत्र पर उपलब्ध कृतियों के साथ रहकर भी अपनी अस्मिता रखती है। ध्वनि सिद्धान्त, रंग चिकित्सा, मणिविज्ञान एवं ध्यान और योग के धरातल पर यह मंत्र क्या कहता है? क्या घोषित करता है और कहां ठहरता है? इस पुस्तक में देखें तथा मंत्रशक्ति और उसकी महत्ता को परखें!

कृति—महामंत्र णमोकार : वैज्ञानिक अन्वेषण
लेखक—डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन, डी० लिट्०
सम्पादन—कुसुम जैन, सम्पादिका—'णाणसायर' (जैन त्रैमासिक)

प्रकाशक
केलादेवी सुमतिप्रसाद ट्रस्ट
बी 5/263, यमुना विहार, दिल्ली 110053

वितरक
अरिहन्त इन्टरनेशनल
239, गली कुंजस, दरीबा, दिल्ली-110006
दूरभाष : 3278761

संस्करण प्रथम, नवम्बर, 1993
मूल्य : 50 रुपये
ISBN No 81-85781-05-2

मुद्रक नवनीत प्रिण्टर्स, दिल्ली-110032

शुभाशीष

णमोकार मन्त्र मगलमय है और अनादि सिद्ध है। इस महामन्त्र की सरचना महत्त्वपूर्ण और अलौकिक है। इस मन्त्र मे परमेष्ठी वदना है, जो परम पावन है और परम इष्ट है। उनकी स्मृति, उनकी अभ्यर्थना और उनकी विनय हमारे कर्म निर्जरण का प्रबल निमित्त है। यह पूर्ण विशुद्ध आध्यात्मिक मन्त्र है, इस मन्त्र के जाप से एक विशिष्ट आध्यात्मिक ऊर्जा समुत्पन्न होती है। क्योंकि महामन्त्र में किसी व्यक्ति विशेष की उपासना नहीं, अपितु गुणों की उपासना है। इस महामन्त्र का महत्त्व इसलिए भी है कि श्रुतज्ञान राशि का सम्पूर्ण खजाना, इसमे है। दूसरे शब्दो में यह महामन्त्र जिन शासन का सार है। इस महामन्त्र की गरिमा के सम्बन्ध मे पूर्वाचार्यों ने सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, गुजराती और राजस्थानी में विपुल साहित्य का सृजन किया है। विविध दृष्टियों से इस महामन्त्र की महत्ता का उदघाटन किया है।

इसके श्रद्धापूर्वक जाप से लौकिक सिद्धियां और सफलताए तो प्राप्त होती ही है पर क्रमश इसके जाप से निश्रेयस सिद्धि और भवमुक्ति भी प्राप्त हो सकती है बशर्ते कि इसका जाप सम्पूर्ण आस्था और भक्ति के साथ, उचित विधि, उपयुक्त स्थान और समय मे शुद्ध मन से किया जाये। जिन्होंने भी जाने/अनजाने इस मन्त्र का आलम्बन लिया है, उसे सकटो, आपत्तियों/विपत्तियो आदि से निकलने, सुलझने का मार्ग मिला है।

एक णमोकार मन्त्र को तीन श्वासोच्छ्वास मे पढ़ना चाहिए। पहली श्वास मे णमो अरिहताण, उच्छ्वास मे णमो सिद्धाण, दूसरी श्वास मे णमो आइरियाण, उच्छ्वास मे णमो उवज्झायाण और तीसरी श्वास मे णमो लोए और उच्छ्वास मे सव्वसाहूण बोले। णमो अरिहताण बोलने के साथ समवशरण में स्थित अष्ट प्रतिहार्यों से मण्डित परम औदारिक शरीर में स्थित वीतराग सर्वज्ञ अरिहन्त आत्मा की अनुभूति हो। णमो सिद्धाण बोलते समय नोकर्म से भी रहित सिद्धालय में विराजमान पूर्ण शुद्धात्मा का अनुभव हो। णमो आयरियाण बोलने पर आचार्य के आठ आचारवान् आदि विशेष गुणों से पूर्ण शिक्षा देते हुए फिर भी अन्तर में, आत्मा में बार-बार उपयोग ले जाने वाले शिष्यो से मण्डित आचार्य का स्मरण हो। णमो उवज्झायाण बोलने पर चेतनानुभूति से भूषित, बाह्य में पठन-पाठन

की क्रिया में लीन महातत्त्वज्ञानी, वादी आचार्य द्वारा प्रदत्त यह आसीन उपाध्याय का ख्याल हो और णमो लोए सव्वसाहूण बोलने पर अट्ठाइस मूलगुणों से पूर्ण शुद्ध उपयोग में विशेष रूप से लगे साधुओं का ध्यान हो। इन परमेष्ठियों के स्मरण और नमस्कारपूर्वक कार्योत्सर्ग करने से आत्मा का आत्मीय सम्बन्ध चैतन्य भावो की सन्निकटता का सम्बन्ध प्रकरण रूप में हो जाता है। पच परमेष्ठियों का सचित्रण हृदय में कर लेंगे और बाहर के काम की ममता का उत्सर्ग कर देंगे तो वास्तविक ध्यान करने की क्षमता प्राप्त होगी और वह ध्यान चैतन्य को स्पर्श करने लगेगा। पाच परमेष्ठियो के स्वरूप मे जो तन्मय हो जाते हैं उन्हे तो आत्मरूप परमात्मपद की प्राप्ति होती है।

मन्त्र का जाप कितनी सख्या में हो, कितने समय तक हो, इसका ख्याल न रखें और अधिक-से-अधिक एकाग्रता और निर्मलता पूर्वक जाप करें इस शैली से मन्त्र जाप द्वारा एक अपूर्व आनन्द आयेगा। मानसिक जाप श्रेष्ठ होता है। जिसमें मन में ही मन्त्र का चिन्तन किया जाता है। होठ भी नहीं हिलते।

'महामन्त्र णमोकार एक वैज्ञानिक अन्वेषण' एक उपयोगी कृति है। इसके लिए लेखक और प्रकाशक बधाई के पात्र हैं। केलादेवी सुमतिप्रसाद ट्रस्ट जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में सक्रिय है, यह प्रशसनीय है।

सम्मेदशिखरजी, मधुवन (बिहार) —आचार्य विमल सागर

8-10-93

पुरोवाक्

अध्यात्म का अर्थ है आत्मा के विषय मे सोचना, चर्चा करना और उसमें उतरना। मानव इस विराट् जगत मे क्रमश. अधिकाधिक उलझता चला जाता है और अपनी भीतरी चैतन्यशक्ति से पराङ्मुख होता चला जाता है। वह सुखो का स्वामी न बनकर दास बन जाता है और एक गहरी रिक्तता का अनुभव करता है। इसी रिक्तता के कारण वह जन्म-जन्मान्तर में भटकता रहता है। वह दुनिया का स्वामी होकर भी स्वय से अपरिचित रहता है। अपने ही घर मे विदेशी हो जाता है। इसी रुग्णता, रिक्तता और नासमझी का उपचार महामन्त्र णमोकार करता है और आत्मा को ससार मे कैसे रहकर अपने परम लक्ष्य को कैसे प्राप्त करना है, यह सहज ज्ञान देता है। मन्त्र का अर्थ है—मन की दुर्गति से रक्षा करने वाला, मन की तृप्ति और मन का आस्फालन।

स्पष्ट है कि स्वय भी आत्मशक्ति से परिचित होने के लिए आत्मशक्ति-प्राप्ति के उत्कृष्ट उदाहरण पचपरमेष्ठी की शरण इस महामन्त्र से ही सम्भव हो सकती है। विशद रूप मे निज की सकल्पशक्ति, इच्छाशक्ति और मानसिक ऊर्जा के विकास के लिए इस मन्त्र की साधना के अनेक रूप अपनाए जाते हैं।

यह महामन्त्र मूलत: अध्यात्मपरक है, परन्तु इसके माध्यम से सासारिक नियमन एव सन्तुलन भी प्राप्त किया जा सकता है। अत सिद्धि और आन्तरिक व्यक्तित्व का साक्षात्कार ये दो रूप इस मन्त्र से प्रकट होते हैं। वस्तुत: सिद्धि तो इससे अनायास होती है, बस निजस्वरूप की प्राप्ति के लिए विशिष्ट साधना अपेक्षित होती है इसी सिद्धि और आन्तरिकता के आधार पर इस मन्त्र के दो रूप बनते हैं। पूर्ण नवकार मन्त्र सिद्धिबोधक है और मूल पचपदी मन्त्र अध्यात्म बोधक है। सासारिकता रहित ससार अपनी सहजता मे स्वय छूट जाता है। जीवन की अनिवार्यता मे हम ससार मे रहते तो है ही। अत हमे उसको नियन्त्रित करना ही होगा।

प्रस्तुत कृति वस्तुत मेरे सेवावकाश से लगभग 2 वर्ष पूर्व मेरे मानस-क्षितिज पर उभरी थी। मैंने पढ़ा, सोचा और अनुभव किया कि णमोकार मन्त्र अनन्त पारलौकिक, लौकिक एव आध्यात्मिक शक्तियो का अक्षय भण्डार है, इस पर कुछ वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करना अधिक समीचीन एव श्रेयस्कर होगा।

वैज्ञानिक शब्द से मेरा आशय विज्ञानपरक न होकर अधिक मात्रा मे क्रमबद्ध, तर्कसगत एव सप्रमाण होना रहा है। हा, जो भी सम्भव हो सका है, मैने वैज्ञानिक मान्यताओ का भी आश्रय लिया है।

इस पुस्तक को इस दिशा मे मैं अपना प्रथम प्रयास मानता हू। मैं समय रहते इस पुस्तक मे सकेतित बिन्दुओ पर विस्तार से काम करूगा।

यह कृति प्राप्त कृतियो के साथ रहकर भी अपनी अस्मिता रखती है। णमोकार मन्त्र विश्वजनीन अनाद्यनन्त मन्त्र है। यह मन्त्र ससार का सस्कार कर उसे अध्यात्म मे परिवर्तित करने की अद्वितीय क्षमता रखता है। ध्वनिसिद्धान्त, रग-चिकित्सा, मणि-विज्ञान एव ध्यान और योग के धरातल पर यह मन्त्र क्या कहता है, क्या घोषित करता है और कहा ठहरता है, सुधीवृन्द देखें, समझे।

मन्त्र-शक्ति और उसकी महत्ता पर भी स्वतन्त्र चर्चा है, अक्षरश: विवेचन है, परखें। एक किंचित्र कुछ भी दावा तो नही कर सकता, परन्तु ईमानदारी का आश्वासन तो दे ही सकता है।

एक बात और—धार्मिक उच्चता या आध्यात्मिक पराकाष्ठा सामान्य मानव मस्तिष्क की पकड से परे होने के कारण आश्चर्य या चमत्कार कही जाती है, यह किसी धर्म की अनिवार्यता है, अन्यथा वह धर्म नही होगा। पूर्णतया जागृत मूलाधार शक्ति का सहज शब्द-उद्रेक मन्त्र होता है।

आभार

इस पुस्तक के कुछ लेख 'तीर्थंकर' पत्रिका मे सन् 1985-86 मे प्रकाशित हुए और फिर 'णाणसायर' पत्रिका ने सभी लेखो को क्रमश प्रकाशित किया।

श्री मेघराज जी तैजस शक्ति सम्पन्न हैं, बडी लगन से आपने पुस्तक छापी है। आपको शुद्ध हृदय से साधुवाद समर्पित करता हू।

महाकवि कालीदास के शब्दो मे मैं केवल इतना ही इगित करना चाहता हू—"आ परितोषात् विदुषां, न साधुमन्ये प्रयोग विज्ञानम्।"

भवदीय

13, शक्तिनगर, पल्लववरम्, मद्रास

रवीन्द्र कुमार जैन

सम्पादकीय

संसार के सभी धर्मों और जातियों मे मन्त्र-विद्या अति प्राचीन विद्या है। आज विज्ञान जिन घटनाओ को असम्भव मानता है, मत्र प्रभाव से वे प्रत्यक्ष देखी जाती है, जिनका उत्तर न विज्ञान के पास है और न ही मनोविज्ञान के पास। अनुभव का सत्य तर्क की कसौटी से ऊपर होता है। विज्ञान की पकड से परे होता है। *महामन्त्र णमोकार अद्भुत अचिन्त्य प्रभावशाली मंत्र है। यह हमारी आत्म-*शक्ति की पुष्टि/वृद्धि, बाहरी अशुभ शक्तियो से रक्षा और चतुर्मुखी अभ्युदय करने वाला है।

जिस प्रकार लोहे और पारस के बीच मे यदि कपडा लगा दें तो लोहा वर्षों तक पारस के साथ रहने पर भी लोहा ही रहेगा, जब तक हमारा अज्ञान और अश्रद्धा का परदा नहीं उठेगा हम महामन्त्र के अमृत का स्पर्श नही कर पायेंगे। मन्त्र या आराधना के क्षेत्र मे श्रद्धा और भक्ति का अत्यन्त महत्त्व है। यदि आपके कण-कण मे, रोम-रोम मे णमोकार मन्त्र रचा/बसा है, आपको उस पर अटल आस्था है तो वह किसी भी क्षण अपना प्रभाव दिखा सकता है?

तीर्थंकर के णमोकार विशेषांक मे एक घटना छपी थी—कि जामनगर के श्री गुलाबचन्द ने इस णमोकार मन्त्र पर अटल आस्था से कैंसर जैसे रोग से भी मुक्ति प्राप्त की थी। आज के वैज्ञानिक युग मे भी जब चिकित्सा विज्ञान अपनी उन्नति के चरम विकास का दावा कर रहा है। फिर भी डाक्टरों को यह कहते सुना जाता है—रोगी को अब दवा की नही दुआ की जरूरत है।

चिकित्सा शास्त्री डॉ लेस्ली वेदरहेड पाश्चात्य जगत मे अध्यात्म चिकित्सा के सिद्धान्तो एव प्रयोगो को विकसित करने मे अग्रणी माने जाते हैं। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "साइकोलॉजी, रिलीजन एण्ड हीलिंग" मे उन्होने सामूहिक प्रार्थना से उद्भूत दिव्य ऊर्जा से कितने ही मरणासन्न व्यक्तियो के स्वस्थ होने की घटनाओ का आँखो देखा विवरण प्रकाशित किया है।

णमोकार मन्त्र से लौकिक लाभ मिलने के अनेको उदाहरण प्रतिदिन सुनने मे आते हैं—किसी का शिरःशूल समाप्त हो गया, किसी के बिच्छू का जहर उतर गया, किसी को सर्पदंश मे जीवनदान मिल गया, किसी को मूल-मत्र की बाधा से मुक्ति मिल गई, किसी को धन की प्राप्ति और किसी को सन्तान-लाभ। णमोकार मन्त्र की महिमा से सम्बद्ध अनगिनत कथाएं प्राचीन ग्रन्थों मे बिखरी पडी है? आज भी सैकडो संस्मरण प्रकाशित हो रहे हैं।

णमोकार मन्त्र के पाँच पदो का स्वरूप-ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है क्योकि इससे श्रद्धा के निर्मल और सुदृढ़ होने मे सहायता मिलती है। इष्ट छत्तीसी में पंच परमेष्ठियों का स्वरूप अत्यन्त सरल सुन्दर रूप मे दिया गया है—

श्री अरिहंत के 46 मूलगुण

चौंतीसो अतिशय सहित, प्रातिहार्य पुनि आठ।
अनन्त चतुष्टय गुण सहित, छीयालीसों पाठ।।
अतिशय रूप सुगंध तन, नाँहि पसेव निहार।
प्रियहित वचन अतुल्य बल, रुधिर श्वेत आकार।।
लक्षण, सहस अरु आठ तन, समचतुष्क सठान।
वज्रवृषभनाराच जुत, ये जनमत दश जान।।
योजन शत इक मे सुभिक्ष, गगन गमन मुख चार।
नहिं अदया उपसग नहिं, नाहीं कवलाहार।।
सब विद्या ईश्वरपनो, नाँहि बढ़ें नख केश।
अनिमिषदृग छाया रहित, दश केवल के वेश।।
देव रचित है चार दश, अर्द्धमागधी भाष।
आपस माहीं मित्रता निर्मल दिश आकाश।।
होत फूल फल ऋतु सबै, पृथ्वी कांच समान।
चरण कमल तल कमल हैं, नभ तें जय जय बान।।
मद सुगंध बयार पुनि, गंधोदक की वृष्टि।
भूमि विषै कटक नहिं, हर्षमयी सब सृष्टि।।
धर्म चक्र आगे रहे, पुनि वसु मगलसार।
अतिशय श्री अरिहंत के ये चौतीस प्रकार।।
तरु अशोक के निकट मे, सिंहासन छविदार।
तीन छत्र सिर पर लसें भामडल पिछवार।।
दिव्य ध्वनि मुखतें खिरे, पुष्टवृष्टि सुर होय।
ढारें चौसठि चमर जख, बाजें दुदुभि जोय।।
ज्ञान अनन्त-अनन्त सुख, दरस अनन्त प्रमान।
बल अनन्त अरिहंत सो इष्ट देव पहिचान।।
जनम जरा तिरसा क्षुधा, विस्मय आरत खेद।
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिंता स्वेद।।
रागद्वेष अरु मरण युत, ये अष्टादश दोष।
नाहि होत अरिहन्त के, सो छवि लायक मोक्ष।।

श्री सिद्ध के 8 गुण

समकित दरशन ज्ञान, अगुर लघू अवगाहना।
सूक्षम वीरजवान, निराबाध गुण सिद्ध के।।

श्री आचार्य के 36 गुण

द्वादश तप दश धर्म जुत, पालें पचाचार।
षट् आवश्यक त्रिगुप्ति गुण, आचारज पद सार।।
अनशन ऊनोदर करैं, व्रत सख्या रस छोर।
विविक्त शयन आसन धरें, काय क्लेश सुठौर।।
प्रायश्चित धर विनय जुत, वैयाव्रत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचार कैं, धरें ध्यान मन लाय।।
छिमा मारदव आरजव, सत्य वचन चित पाग।
सजम तप त्यागी सरब, आकिंचन तिय त्याग।।
समता धर वन्दन करैं, नाना थुति बनाय।
प्रतिक्रमण स्वाध्याय जुत, कार्योत्सर्ग लगाय।।
दर्शन ज्ञान चरित्र तप, वीरज पचाचार।
गोपें मन वच काय को, गिन छत्तीस गुण सार।।

श्री उपाध्याय के 25 गुण

चौदह पूरब को धरें, ग्यारह अग सुजान।
उपाध्याय पच्चीस गुण, पढ़ें पढ़ावें ज्ञान।।
प्रथमहि आचारांग गनि, दूजो सूत्रकृतांग।
ठाण अग तीजो सुभग, चौथो समवायाग।।
व्याख्यापण्णति पचमो, ज्ञातृकथा षट आन।
पुनि उपासकाध्ययन है, अन्तकृत दश ठान।।
अनुत्तरण उत्पाददश है, सूत्र विपाक पिचान।
बहुरि प्रश्नव्याकरणजुत, ग्यारह अग प्रमान।।
उत्पाद पूर्व अग्रायणी, तीजो वीरजवाद।
अस्ति नास्ति परमाद पुनि, पचम ज्ञान प्रवाद।।
छट्ठो कर्म प्रवाद है, सत प्रवाद पहिचान।
अष्टम आत्मप्रवाद पुनि, नवमो प्रत्याख्यान।।
विद्यानुवाद पूरब दशम, पूर्वकल्याण महत।
प्राणवाद किरिया बहुल लोकबिन्दु है अन्त।।

श्री सर्व साधु के 28 मूल गुण

पचमहाव्रत समिति पच, पचेन्द्रिय का रोध।
षट् आवश्यक साधुगुण, सात शेष अवबोध।।

हिंसा अनृत तसकरी, अब्रह्म परिग्रह पाप।
मनवचनतं त्यागवो, पंच महाव्रत थाप।।
ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपण आदान।
प्रतिष्ठापनाजुत क्रिया, पाँचो समिति विधान।।
सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत्रका रोध।
षठ आवशि मजन तजन, शयन भूमि का शोध।।
वस्त्र त्याग केशलोच अरु, लघु भोजन इकबार।
दांतन मुख में ना करं, ठाड़े लेहि आहार।।

●

साधर्मी भवि पठन को, इष्ट छतीसी ग्रन्थ।
अल्प बुद्धि बुधजन रच्यौ, हितमित शिवपुर पथ।।

श्रद्धा के साथ आवश्यक है भावना की शुद्धि। णमोकार मन्त्र जपते समय मन मे बुरे विचार, अशुभ सकल्प और विकार नही आने चाहिए। मन की पवित्रता मे हम मन्त्र का प्रभाव शीघ्र अनुभव कर सकेंगे। मन जब पवित्र होता है तो उसे एकाग्र करना भी सहज हो जाता है।

भक्ति मे शक्ति जगाने के लिए समय की नियमितता और निरन्तरता आवश्यक है। मन्त्रपाठ नियमित और निरन्तर होने से ही वह चमत्कारी फल पैदा करता है। हा, यह जरूरी है कि जप के साथ शब्द और मन का सम्बन्ध जुड़ना चाहिए। पातंजल योग दर्शन मे कहा है—तज्जपस्तदर्थभावनम्—जप वही है, जिसमे अर्थभावना शब्द के अर्थ का स्मरण, अनुस्मरण, चिन्तन और साक्षात्कार हो।

जप-साधना मे सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, चित्त की प्रसन्नता। जप करने का स्थान साफ, स्वच्छ होना चाहिए। आसपास का वातावरण शान्त हो, कोलाहल-पूर्ण नही हो। जिस आसन पर या स्थान पर जप किया जाता है, वह जहा तक सम्भव हो, नियत, निश्चित होना चाहिए। स्थान को बार-बार बदलना नहीं चाहिए। सीधे जमीन पर बैठकर जाप करना उचित नही माना जाता। साधना, ध्यान आदि के समय भूमि और शरीर के बीच कोई आसन होना जरूरी है। सर्व-धर्म कार्य सिद्ध करने के लिए दर्भासन (दाभ, कुशा) का आसन उत्तम माना जाता है। पूर्व या उत्तर दिशा मे मुख करके साधना-ध्यान करना चाहिए। पद्मासन या सिद्धासन जप का सर्वोत्तम आसन है। जप के लिए ऐसा समय निश्चित करना चाहिए जब साधक शान्ति और निश्चितता के साथ बैठ सके। भाग-दौड़ का समय जप के लिए उचित नही होता, इससे व्यर्थ ही मानसिक तनाव और उतावली बनी रहती है। जिस कारण ध्यान मे मन नही लगता। एकान्त मे, आलस्यरहित होकर शान्त मन से मन-ही-मन जप करना चाहिए।

णमोकार मन्त्र के विषय मे यह प्रसिद्धि है कि इसका आठ करोड, आठ लाख आठ हजार, आठ सौ आठ बार जप करने से जीव को तीसरे भव मे परम सुख-धाम मोक्ष की प्राप्ति होती है। पर कम-से-कम प्रतिदिन एक माला तो अवश्य ही हर किसी को जपनी चाहिए।

जैन साधना पद्धति मे दो प्रकार के स्तोत्र विशेष प्रसिद्ध है एक वज्रपजर स्तोत्र, दूसरा जिनपजर स्तोत्र। वज्रपजर स्तोत्र मे णमोकार मन्त्र के पदो का अपने अगों पर न्यास किया जाता है और उनके व्रजमय बनाने की भावना की जाती है। जिनपजर स्तोत्र मे चौबीस तीर्थंकरो का अंग न्यास किया जाता है।

आत्मरक्षा वज्रपञ्जर स्तोत्र

ॐ परमेष्ठिनमस्कारं सार नवपदात्मकम्।
आत्मरक्षाकर वज्र-पञ्जराभं स्मराम्यहम् ॥1॥
ॐ नमो अरहंताण शिरस्क शिरसि स्थितम्।
ॐ नमो सव्वसिद्धाणं, मुखे मुखपट वरम् ॥2॥
ॐ नमो आयरियाण अंगरक्षाऽति शायिनी।
ॐ नमो उवज्झायाण, आयुध हस्तयोर्हृढम् ॥3॥
ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं, मोचके पादयो शुभे।
एसो पचनमु कारो, शिला वज्रमयीतले ॥4॥
सव्वपाव-प्पणासणो, वप्रो वज्रमयो बहिः।
मगलाण च सव्वेसि, खादिराङ्गारखातिका ॥5॥
स्वाहान्त च पद ज्ञेयं, पढम हवइ मंगल।
वप्रोपरि वज्रमय, पिधान देहरक्षणे ॥6॥
महाप्रभावा रक्षेय, क्षुद्रोपद्रव-नाशिनी।
परमेष्ठिपदोद्भूता, कथितापूर्वसूरिभि ॥7॥
यश्चैवं कुरुते रक्षा, परमेष्ठि-पदै सदा।
तस्य न स्याद् भय व्याधिराधिश्चापि कदाचन ॥8॥

जिनपञ्जर स्तोत्र

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं अर्हद्भ्यो नमो नम।
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं सिद्धभ्यो नमो नमः ॥1॥
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं आचार्यभ्यो नमो नम।
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं उपाध्यायेभ्यो नमो नम ॥2॥
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्री गौतमस्वामी प्रमुख सर्व साधुभ्यो नमो नमः।
एष पंच नमस्कारः सर्वपापक्षयंकरः।

हिंसा अनृत तसकरी, अब्रह्म परिग्रह पाप।
मनवचनतें त्यागवो, पंच महाव्रत थाप।।
ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपण आदान।
प्रतिष्ठापनाजुत किया, पाँचो समिति विधान।।
सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत्रका रोध।
षठ आवशि मजन तजन, शयन भूमि का शोध।।
वस्त्र त्याग केशलोंच अरु, लघु भोजन इकबार।
दांतन मुख में ना करें, ठाड़े लेहि आहार।।

●

साधर्मी भवि पठन को, इष्ट छतीसी ग्रन्थ।
अल्प बुद्धि बुधजन रच्यो, हितमित शिवपुर पथ।।

श्रद्धा के साथ आवश्यक है भावना की शुद्धि। णमोकार मन्त्र जपते समय मन मे बुरे विचार, अशुभ संकल्प और विकार नही आने चाहिए। मन की पवित्रता से हम मन्त्र का प्रभाव शीघ्र अनुभव कर सकेंगे। मन जब पवित्र होता है तो उसे एकाग्र करना भी सहज हो जाता है।

भक्ति मे शक्ति जगाने के लिए समय की नियमितता और निरन्तरता आवश्यक है। मन्त्रपाठ नियमित और निरन्तर होने से ही वह चमत्कारी फल पैदा करता है। हा, यह जरूरी है कि जप के साथ शब्द और मन का सम्बन्ध जुड़ना चाहिए। पातंजल योग दर्शन मे कहा है—तज्जपस्तदर्थभावनम्—जप वही है, जिसमे अर्थभावना शब्द के अर्थ का स्मरण, अनुस्मरण, चिन्तन और साक्षात्कार हो।

जप-साधना मे सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, चित्त की प्रसन्नता। जप करने का स्थान साफ, स्वच्छ होना चाहिए। आसपास का वातावरण शान्त हो, कोलाहल-पूर्ण नही हो। जिस आसन पर या स्थान पर जप किया जाता है, वह जहा तक सम्भव हो, नियत, निश्चित होना चाहिए। स्थान को बार-बार बदलना नहीं चाहिए। सीधे जमीन पर बैठकर जाप करना उचित नहीं माना जाता। साधना, ध्यान आदि के समय भूमि और शरीर के बीच कोई आसन होना जरूरी है। सर्व-धर्म कार्य सिद्ध करने के लिए दर्भासन (दाभ, कुशा) का आसन उत्तम माना जाता है। पूर्व या उत्तर दिशा मे मुख करके साधना-ध्यान करना चाहिए। पद्मासन या सिद्धासन जप का सर्वोत्तम आसन है। जप के लिए ऐसा समय निश्चित करना चाहिए जब साधक शान्ति और निश्चितता के साथ बैठ सके। भाग-दौड़ का समय जप के लिए उचित नही होता, इससे व्यर्थ ही मानसिक तनाव और उतावली बनी रहती है। जिस कारण ध्यान मे मन नहीं लगता। एकान्त में, आलस्यरहित होकर शान्त मन से मन-ही-मन जप करना चाहिए।

णमोकार मन्त्र के विषय मे यह प्रसिद्धि है कि इसका आठ करोड, आठ लाख आठ हजार, आठ सौ आठ बार जप करने से जीव को तीसरे भव मे परम सुख-धाम मोक्ष की प्राप्ति होती है। पर कम-से-कम प्रतिदिन एक माला तो अवश्य ही हर किसी को जपनी चाहिए।

जैन साधना पद्धति मे दो प्रकार के स्तोत्र विशेष प्रसिद्ध है एक वज्रपजर स्तोत्र, दूसरा जिनपजर स्तोत्र। वज्रपजर स्तोत्र मे णमोकार मन्त्र के पदो का अपने अगो पर न्यास किया जाता है और उनके व्रजमय बनाने की भावना की जाती है। जिनपजर स्तोत्र मे चौबीस तीर्थकरो का अग न्यास किया जाता है।

आत्मरक्षा वज्रपञ्जर स्तोत्र

ॐ परमेष्ठिनमस्कार सार नवपदात्मकम्।
आत्मरक्षाकर वज्र-पञ्जराभ स्मराम्यहम् ॥1॥
ॐ नमो अरहताण शिरस्कं शिरसि स्थितम्।
ॐ नमो सव्वसिद्धाण, मुखे मुखपट वरम् ॥2॥
ॐ नमो आयरियाण अंगरक्षाऽति शायिनी।
ॐ नमो उवज्झायाणं, आयुध हस्तयोर्दृढम् ॥3॥
ॐ नमो लोए सव्वसाहूण, मोचके पादयो शुभे।
एसो पंचनमु कारो, शिला वज्रमयीतले ॥4॥
सव्वपाव-प्पणासणो, वप्रो वज्रमयो वहिः।
मगलाणं च सव्वेसि, खादिराङ्गारखातिका ॥5॥
स्वाहान्त च पद ज्ञेय, पढम हवइ मंगल।
वप्रोपरि वज्रमय, पिधान देहरक्षणे ॥6॥
महाप्रभावा रक्षेय, क्षुद्रोपद्रव-नाशिनी।
परमेष्ठिपदोद्भूता, कथितापूर्वसूरिभि ॥7॥
यश्चैवं कुरुते रक्षा, परमेष्ठि-पदैः सदा।
तस्य न स्याद् भय व्याधिराधिश्चापि कदाचन ॥8॥

जिनपञ्जर स्तोत्र

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं अर्हद्भ्यो नमो नमः।
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं सिद्धभ्यो नमो नमः ॥1॥
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं आचार्यभ्यो नमो नम.।
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं उपाध्यायेभ्यो नमो नम ॥2॥
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्री गौतमस्वामी प्रमुख सर्व साधुभ्यो नमो नमः।
एष पंच नमस्कारः सर्वपापक्षयंकरः।

मंगलाणं च सर्वेषा, प्रथमं भवति मंगलं।
ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं जये विजये, अर्हं परमात्मने नमः।
कमलप्रभ सूरीन्द्र भाषितं जिनपञ्जरम् ॥3॥
एकभुक्तोपवासेन त्रिकालं य पठेदिदम्।
मनोभिलषित सर्वं, फल स लभते ध्रुवं॥
भशायी ब्रह्मचर्येण, क्रोधलोभविवर्ज्जितः।
देवताग्रे पवित्रात्मा, षण्मासैर्लभते फलं॥4॥
अर्हन् स्थापयेन्मूर्ध्नि—सिद्ध चक्षुर्ललाटके।
आचार्यश्रोत्रयोर्मध्ये, उपाध्यायन्तु नासिके॥5॥
साधुवृंदं मुखस्याग्रे मनःशुद्धिं विधाय च।
सूर्यचन्द्रनिरोधेन सुधी सर्वार्थसिद्धये॥6॥
दक्षिणे मदनद्वेषी वामपार्श्वे स्थितो जिनः।
अगसधिषु सर्वज्ञ, परमेष्ठी शिवकरः॥7॥
पूर्वस्यां जिनो रक्षेत् आग्नेय्यां विजितेन्द्रिय।
दक्षिणस्यां पर-ब्रह्म, नैऋत्यां च त्रिकालवित्॥8॥
पश्चिमाया जगन्नाथो, वायव्ये परमेश्वर।
उत्तरां तीर्थकृत्सर्व, ईशाने च निरंजन॥9॥
पाताल भगवान्नार्हन्नाकाशे पुरुषोत्तम।
रोहिणी प्रमुखादेव्यो रक्षतु सकल कुलम्॥10॥
ऋषभो मस्तकं रक्षेदजितोऽपि विलोचने।
सभव कर्णयुगले, नासिका चाभिनन्दन॥11॥
ओष्ठौ श्री सुमति रक्षेत्, दंतान्पद्म प्रभोविभु।
जिह्वा सुपार्श्वदेवोऽय, तालु चद्रप्रभामिध॥12॥
कठं श्री सुविधिरक्षेत् हृदयं श्री सुशीतल।
श्रेयासो बाहुयुगलं, वासुपूज्य कर-द्वयं॥13॥
अंगुलीं विमलो रक्षेत, अनंतोऽसौ नखानपि।
श्री धर्मोप्युदरास्थीनि, श्री शांतिर्नाभिमण्डल॥14॥
श्री कुथो गुह्यक रक्षेत्, अरो रोमकटीतले।
मल्लिरुरू पृष्टिवंशं, पिंडिका मुनिसुव्रत॥15॥
पादांगुलिर्नमी रक्षेत्, श्री नेमीश्चरण द्वयम्।
श्री पार्श्वनाथः सर्वांगं बर्द्धमानश्चिदात्मकम्॥16॥
पृथ्वी जल तेजस्क, वाय्वाकाशमयं जगत्।
रक्षेदशेषमापेभ्यो, वीतरागो निरंजन॥17॥

राजद्वारे श्मशाने च, सग्रामे शत्रुसंकटे।
व्याघ्रचौरादिसर्पादि, भूतप्रेत भयाश्रिते ।।18।।
अकाले मरणे प्राप्ते दारिद्र्यापत्समाश्रिते।
अपुत्रत्वे महादुखे, मूर्खत्वे रोगपीडिते ।।19।।
डाकिनी शाकिनी ग्रस्ते, महाग्रहगणार्दिते।
नद्युत्तारेऽध्वर्वैषम्ये, व्यसने चापदि स्मरेत् ।।20।।
प्रातरेव समुत्थाय, य पठेज्जिनपजर।
तस्य किंचिद्भयं नास्ति, लभते सुखसम्पद ।।21।।
जिनपंजरनामेद य, स्मरत्यनुवासरम्।
कमलप्रभ राजेन्द्र, श्रीय स लभते नर ।।22।।
प्रात. समुत्थाय पठेत्कृतज्ञो, य स्तोत्रमेतज्जिनपंजरस्य।
आसादयेन सः कमलप्रभाख्य, लक्ष्मीं मनोवांछितपूरणाय ।।23।।
श्री रुद्रपल्लीय वरव्य एवगच्छे, देवप्रभाचार्यपदाब्जहस ।
वादीन्द्रचूडामणिरेष जैनो, जीयादसौ श्री कमलप्रभाख्या ।।24।।

प्राचीन मन्त्र शास्त्रो मे आत्मरक्षा इन्द्र कवच का वर्णन मिलता है। "मंत्राधिराज चिन्तामणि श्री णमोकार महामत्र कल्प" आदि ग्रन्थो मे इस प्रकार है—

1. ॐ णमो अरिहताण ह्रां हृदयं रक्ष रक्ष हु फट् स्वाहा।
2 ॐ णमो सिद्धाण ह्रीं शिरो रक्ष रक्ष हु फट् स्वाहा।
3 ॐ णमो आयरियाण हूं शिखा रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।
4. ॐ णमो उवज्झायाणं हैं एहि एहि भगवति वज्र कवच वज्रिणि वज्रिणि रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।
5 ॐ णमो लोए सव्व साहूणं ह क्षिप्र क्षिप्र साधय वज्रहस्ते शूलिनि दुष्टान् रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।

णमोकार मन्त्र व्रतो का विधान भी है। जो 18 मास मे 35 दिन में होता है। मन्त्र साधना के क्षेत्र मे, अनुभवी साधको से जानकारी प्राप्त कर लेना उपयोगी रहता है। णाणसायर (जैन त्रैमासिक) का णमोकार विशेषाक प्रकाशित हुआ है। जो बहुत चर्चित रहा। साधक उसे भी देखे। यदि आपकी कोई समस्या या जिज्ञासा है, तो आप निसंकोच लिख सकते है। मेरा दृढ विश्वास है कि आपकी हर समस्या का समाधान णमोकार मन्त्र मे है, आशा है आप इस महामन्त्र की आराधना और साधना कर अपने जीवन को पावनता के उच्च शिखरो पर अग्रसर करेंगे।

भवदीया

दिल्ली, 16 अक्टूबर 1993 कुसुम जैन

सम्पादिका-णाणसायर (जैन त्रैमासिक)

हमारी योजना

श्री अशोक जैन, सम्पादक, 'सहज-आनन्द' ने अपने माता-पिता की पावन स्मृति मे केलादेवी सुमतिप्रसाद ट्रस्ट की स्थापना की। ट्रस्ट के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण मौलिक साहित्य प्रकाशित करने के साथ-साथ, प्रतिवर्ष जैन विद्या के क्षेत्र मे कार्यरत विद्वान को पुरस्कृत करने की योजना वनाई गई है। इस योजना मे प्रथम पुरस्कार डॉ रवीन्द्र कुमार जैन, मद्रास को उनकी पाडुलिपि 'णमोकार वैज्ञानिक अन्वेषण' पर दिया गया, जो अब पुस्तकाकार रूप मे आपके हाथो मे है। यह ट्रस्ट का पाचवा पुष्प है। इसके पूर्व हमने आत्मा का वैभव (दर्शन लाड़), जैन गीता (आचार्य विद्यासागर), छहढाला का अग्रेजी अनुवाद (डॉ० एस० सी० जैन), Scientific Treatise on Great Namokar Mantra (Dr R. K Jain) प्रकाशित की है। हमारे सभी प्रकाशनो को विद्वत् समाज मे समादर प्राप्त हुआ है। हमे विश्वास है कि यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक एक दस्तावेज के रूप मे पहचानी जायेगी।

आज देश के विभिन्न विश्वविद्यालयो मे जैन विद्या से सम्बन्धित अधिकाश शोध-प्रबन्ध अप्रकाशित ही पडे है। समाज के समर्थ लोगो का यह अत्यन्त पवित्र दायित्व हो जाता है कि वे अत्यन्त श्रम से लिखे गए इन शोध प्रबन्धो को प्रकाशित करवाने हेतु अपना सक्रिय और ठोस सहयोग प्रदान करें। केलादेवी सुमतिप्रसाद ट्रस्ट, इस सारस्वत साधना के प्रोत्साहन हेतु एक योजना प्रारम्भ कर रहा है। मैं समाज के प्रबुद्ध निष्ठावान कार्यकर्त्ताओ का इस महत्त्वपूर्ण योजना को साकार करने मे अपना हर सम्भव सहयोग देने का आह्वान करता हू।

भवदीय

मेघराज जैन

सचिव—केलादेवी सुमति प्रसाद ट्रस्ट, दिल्ली

अनुक्रम

लेखक-परिचय

नाम—रवीन्द्रकुमार जैन

जन्म—15-12-1925—झाँसी (उ० प्र०)

शिक्षा—जैन सिद्धान्त शास्त्री, काव्यतीर्थ, एम० ए० (हिन्दी एवं संस्कृत), पी-एच० डी०, डी० लिट्०

शैक्षिक सेवा—पंजाब, आगरा, तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश) एव मद्रास विश्व विद्यालयो मे कुल 35 वर्ष तक स्नातकोत्तर एवं शोध स्तरीय अध्यापन किया। सन् 1985 मे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के विश्वविद्यालय विभाग के अध्यक्ष एवं प्रोफेसर के रूप मे सेवावकाश ग्रहण किया।

35 छात्रो ने पी-एच० डी०, तथा 50 छात्रो ने एम० फिल्० उपाधियाँ आपके निर्देशन मे प्राप्त की।

साहित्य, संस्कृति एवं समाज से सम्बन्धित लगभग 200 लेख प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओ, स्मारिकाओ मे प्रकाशित। एक सशक्त कवि, लेखक, वक्ता एव प्राध्यापक के रूप मे ख्याति अर्जित।

प्रमुख प्रकाशित ग्रन्थ

1	कविवर बनारसीदास	शोध	1964
2.	तप्त लहर	स्वकाव्य	1965
3.	उपन्यास सिद्धान्त और संरचना	समीक्षा	1972
4	बिहारी नवनीत	समीक्षा	1972
5.	जन मानस	स्व काव्य	1972
6	साहित्यिक अनुसधान के आयाम	समीक्षा	1975
7.	साहित्यालोचन के सिद्धान्त	काव्य शास्त्र	1989
8.	साक्षात्कार	काव्य	1990
9	बालशौरिरेड्डी का औप० कृतित्व	समीक्षा	1991
11.	A Scientific Treatise on Great NamokarMantra		1993
11	महामन्त्र णमोकार : वैज्ञानिक अन्वेषण	समीक्षा	1993

धर्म और उसकी आवश्यकता

मन, वाणी और शरीर के द्वारा किया गया अहिंसात्मक एव निर्माणकारी आचरण ही धर्म है। मन मे, वचन में और क्रिया मे पूर्णतया एकरूपता होने पर ही किसी विषय मे स्थिरता और निर्णायकता आ सकती है। ससार के सभी प्राणी सुख चाहते हैं और दुख से बचना चाहते है। उसी सुख प्राप्ति की होडा-होडी मे मानव विश्व का सब कुछ किसी भी कीमत पर प्राप्त कर लेना चाहता है। परन्तु ससार-सग्रह का तो अन्त नही है। प्राय· बहुत बाद मे हम यह अनुभव करते है कि सुख ससार को पाने मे नही अपितु त्यागने में है। जीवन की सार्थकता निजी पवित्रता के साथ दूसरो के लिए जीने में है। यदि ससार के वैभव मे सुख होता तो तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण और प्रतिनारायण आदि उसको तृणवत् त्यागकर वैराग्य का जीवन क्यो अपनाते ? अत स्पष्ट है कि मानव का जीव मात्र के प्रति अहिसक एव हितकारी आचरण ही धर्म है। विश्व के सभी धर्मो मे, धर्म का सार यही है। इसी सार को अपने-अपने ढंग से सब धर्मो ने परिभाषित किया है। जैन धर्म में भी कही आत्मा की विशुद्धता पर बल दिया गया है और कही आचरण की विशुद्धता पर, भेद केवल बलाबल का है। हम सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो यह भेद सभी जैन-शाखाओ के अध्ययन से स्पष्ट हो जाएगा। धर्म बोझ नही है, वह जीवन की सम्पूर्ण सहजता है। निर्विकार आत्मा की सहजावस्था ऊर्ध्व-गमन है—आध्यात्मिक मूल्यों का विकास है। मानव जीवन की उत्कृष्ट अवस्था है आत्म-साक्षात्कार अर्थात् हमारा अपनी निजता मे लौटना। निजता मे लौटना सयम द्वारा ही सभव है। कल्पसूत्र की परिभाषा दृष्टव्य है—"सयम मार्ग मे प्रवृत्ति करने वाले जिससे समर्थ बनते है, वह कल्प कहलाता है। उस कल्प की निरुपणा करने वाले शास्त्र को 'कल्प सूत्र' कहते है।" हमारे शास्त्रो मे धर्म को बहुविध परिभाषित किया है—यथा-'वत्थु सहावो धम्मो' अर्थात् वस्तु का स्वभाव (सहज जीवन) ही धर्म है। तत्वार्थ सूत्र में

"सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्ग" अर्थात् सम्यक्दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य का एकीकृत त्रिक ही मोक्षमार्ग है—धर्म है।

मानन मात्र मे भावना के दो स्तर होते है। ऐन्द्रिक सुखों की ओर आकृष्ट करने वाले भाव—हीन भाव कहलाते है। इनमे तात्कालिक आकर्षण और प्रत्यक्ष सुख झलकता है/मिलता है अत. मानव इनसे प्रभावित होकर इनका अनुचर बन जाता है। दूसरे भाव आत्मिक स्तर के उच्च भाव है। इनमे त्वरित सुख नही है। धीरे-धीरे इनमे से स्थायी सुख प्राप्त होता है। ये भाव है—अहिसा, दया, क्षमा, वात्सल्य, त्याग, तप, सयम एव परसेवा। उच्च स्तरीय भावो मे प्रवृत्ति कम ही होती है। ज्यो-ज्यो ससार मे भोग, विलास की सामग्री का अम्बार जुटता है, त्यों-त्यो मानव की लौकिक प्रवृत्ति भी बढती जाती है। आज गत युगों की तुलना में हमारी सभ्यता (भौतिक जिजीविषा) बहुत अधिक विकसित हो चुकी है। अनाज उत्पादन, शस्त्र निर्माण, औद्योगिक विकास, चिकित्सा विज्ञान, यातायात के साधन, दूरदर्शन आदि के आविष्कारो ने आज के मानव को इतना सुविधाजीवी बना दिया है, इतना सासारिक और पगु बना दिया है कि बस वह एक यन्त्र का अश मात्र बनकर रह गया है। वह जीवन के, नये मूल्य बना नही पाया है और पुराने मूल्यों को हीन और अनुपयोगी समझकर छोड़ चुका है। वह त्रिशकु की तरह अनिश्चितता मे लटक रहा है। दो विश्व युद्धों ने उसके जीवन मे अनास्था, निराशा और अनिश्चितता भर दी है। वह अज्ञात और अनिर्दिष्ट दिशाओ मे भागा चला जा रहा है। आशय यह है कि आज का मानव जीवन मूल्यों एव आध्यात्मिक मूल्यों की असगति और अनिश्चितता से बडी तेजी से गुजर रहा है। इस प्रसग मे महाकवि भर्तृहरि का एक प्रसिद्ध पद्य उदाहरणीय है—

> **"अज्ञः सुखमाराध्यः, सुखतर माराध्यते विशेषज्ञः ।**
> **ज्ञान लव दुर्विदग्धं, ब्रह्मापि नरं न रञ्जयति ।।"**
>
> **नीतिशतक-3**

अर्थात् मूर्ख व्यक्ति को सरलता से समझाया जा सकता है, विशेषज्ञ को संकेत मात्र से समझाया जा सकता है, किन्तु जो अर्धज्ञानी है उसे ब्रह्मा भी नही समझा सकते हैं। स्पष्ट है कि आधुनिक मानव तृतीय विश्वयुद्ध के ज्वालामुखी पर बैठा हुआ है। कभी—किसी क्षण मे वह

भस्म हो सकता है। अतः आज उसे धार्मिक जिजीविषा की-आध्यात्मिक जिजीविषा की गतयुगो की अपेक्षा अत्यधिक आवश्यकता है। इस सदर्भ मे एक अत्यन्त सटीक उदाहरण दृष्टव्य है—

औरगजेब ने अपने एक पत्र मे अपने अध्यापक को लिखा है, "तुमने मेरे पिता शाहजहा से कहा था कि तुम मुझे दर्शन पढ़ाओगे। यह ठीक है, मुझे भली-भाँति याद है कि तुमने अनेक वर्षो तक मुझे वस्तुओं के सम्बन्ध मे ऐसे अनेक अव्यक्त प्रश्न समझाए, जिनसे मन को कोई सन्तोष नही होता और जिनका मानव समाज के लिए कोई उपयोग नही है। ऐसी थोथी धारणाएं और खाली कल्पनाएं, जिनकी केवल यह विशेषता थी कि उन्हे समझ पाना बहुत कठिन था और भूल जाना बहुत सरल···क्या तुमने कभी मुझे यह सिखाने की चेष्टा की कि शहर पर घेरा कैसे डाला जाता है या सेना को किस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है ? इन वस्तुओ के लिए मैं अन्य लोगों का आभारी हूं, तुम्हारा बिलकुल नही।" आज जो संसार इतनी सकटापन्न स्थिति में फंसा है, वह इसलिए कि वह 'शहर पर घेरा डालने' या 'सेना को व्यवस्थित करने' के विषय मे सब कुछ जानता है और जीवन के मूल्यों के विषय मे, दर्शन और धर्म के केन्द्रीभूत प्रश्नों के सम्बन्ध मे, जिनको कि वह थोथी धारणा और कोरी कल्पनाए कहकर एक ओर हटा देता है, बहुत कम जानता है।*

विवेक पुष्ट आस्था धर्म की रीढ है। हम अनेक धार्मिक तत्वो को प्राय ठीक समझे बगैर ही उन्हे तुच्छ और अनुपादेय कहकर उपेक्षित कर देते है। विद्या प्राप्ति के पूर्व और विद्या प्राप्ति के समय तथा बाद मे भी विनय गुण की महती आवश्यकता है। महामन्त्र णमोकार इसी नमन गुण का महामन्त्र है। उपाध्याय अमर मुनि जी ने अपनी पुस्तक 'महामन्त्र णमोकार' मे लिखा है—"मनुष्य के हृदय की कोमलता, समरसता, गुण-ग्राहकता एव भावुकता का पता तभी लग सकता है जबकि वह अपने से श्रेष्ठ एव पवित्र महान् आत्माओ को भक्ति भाव से गद्गद् होकर नमस्कार करता है, गुणो के समक्ष अपनी अहता को त्यागकर गुणी के चरणो मे अपने आपको सर्वतोभावेन अर्पित कर देता

* 'धर्म और समाज' पृ० 5—डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (हिन्दी अनुवाद)।

है।" जैन साधना पद्धति जीवत्व से प्रारम्भ होकर आत्मोपलब्धि (मोक्ष प्राप्ति) मे पर्यवसित होती है। जैन साधना का मूलाधार इन्द्रिय सयम एवं मनोनियन्त्रण है। महामन्त्र इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

उक्त विवेचन द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि मानव जाति को धर्म की आवश्यकता सदा से रही है और आज की परिस्थिति मे सर्वाधिक है। आज मानव जाति के सास्कृतिक एव आध्यात्मिक मूल्यो मे विघटन बढ़ता जा रहा है और सभ्यता के नित नये आडम्बरो से वह स्वय को विवश भाव से जकडती जा रही है। अत सासारिक और आध्यात्मिक मूल्यो की इस स्थिति को केवल धर्म ही सम्हाल सकता है, वह ही सन्तुलन दे सकता है।

धर्म व्यक्ति को समाज या राष्ट्र की इकाई मानता है और उसके विकास मे सामाजिक विकास का सहज आदर्श देखता है, वह प्रत्येक व्यक्ति की महानता की सभावना मे विश्वास करता है। पूजीवादी व्यवस्था अन्त करण की स्वाधीनता और स्वाभाविक अधिकारो की बात करके शोषण करती रहती है। दूसरी ओर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मे पदार्थ को प्राथमिकता देकर चेतन तत्व को उसका उपजात माना गया है और अन्त मे सामाजिक व्यवस्था और विकास को ही महत्व दिया गया है, व्यक्तिगत स्वाधीनता को नही। यान्त्रिक भौतिकवाद मे तो जीव-तत्व को भी पदार्थ के रूप मे ही स्वीकार किया गया है। अत मार्क्सवाद मे समाज को बदलकर ही व्यक्ति को बदलने की प्रक्रिया है। व्यावहारिक विज्ञान और तकनीकी विज्ञान जिनके आविष्कार से मानव बुद्धि की प्रकृति पर विजय सिद्ध हुई है। इनका सामान्य मानव पर ठीक उल्टा प्रभाव पडा है कि इन यन्त्रो का दासानुदास बन गया है। मानव ऊर्जा का यन्त्रीकरण हो गया है। स्पष्ट है कि आज का मानव एक खोखला एव उद्देश्यहीन जीवन जी रहा है। आत्मा की महानता का आदर्श आज लुप्त सा हो गया है। "आत्मार्थे पृथिवी त्यजेत्" का आदर्श आज केवल ऐतिहासिक महत्व की चीज बनकर रह गया है। यद्यपि आज सस्कृति और धर्म के नाम पर कुछ खद्योती कार्य होते है, पर इनसे कल्मष की जमी मोटी परते कैसे घट-कट सकती है? अत आज मानव जाति की भीतरी ताकतो को बचाने के लिए धर्म को

सर्वथा नये चैतन्य के साथ उभरना है। यदि और विलम्ब हुआ तो फिर मानव उस पाशविक धरातल पर पहुच चुका होगा, जहा से उसे आत्मा का स्वर सुनाई ही नही देगा। भौतिक विकास और उपलब्धियो का पूर्ण स्वामी होकर भी मानव ने इनकी पराधीनता स्वीकार कर ली है। मानव चरित्र का ऐसा पतन इस युग की सबसे बडी क्षयकरी दुर्घटना है।

धर्मरूप—मन्त्रो का प्रमुख महत्व उनकी पारलौकिकता एव अध्यात्म-दृष्टि मे है। लौकिक-मगल की पूर्ण प्राप्ति उससे संभव है परन्तु वह गौण है। वास्तव में अति सक्षेप मे—सूत्र रूप मे मन्त्रों द्वारा ही किसी धर्म को समझा जाता है। जब-जब कोई धर्म लुप्त होता है तो केवल मन्त्रो की ही जिह्वास्थता शेष रहती है और हम कालान्तर में अपने अतीत से पुन: जुड जाते है। जैन महामन्त्र अनाद्यनन्त है। उसमे जैन धर्म का समस्त आचार-विचार पूर्णतया अन्त स्यूत है □

मन्त्र और मन्त्रविज्ञान

शब्द अथवा शब्दो मे सस्थापित दिव्यत्व एव आध्यात्मिक ऊर्जा ही मन्त्र है। किसी ऋषि अथवा स्वयं ईश्वर-तीर्थंकर द्वारा अपनी तप पूत वाणी मे इन मन्त्रो की रचना की जाती है। इन मन्त्रो का प्रभाव युग-युगान्तर तक बराबर बना रहता है। मन्त्र मे निहित शब्द, अर्थ और स्वय मन्त्र साधन है। मन्त्र के द्वारा शुद्धतम आत्मोपलब्धि (मुक्ति) एव लौकिक सिद्धिया भी प्राप्त होती है। मन्त्र का मुख्य लक्ष्य आध्यात्मिक विशुद्धता ही है। मन्त्र मे निहित ईश्वरीय गुणों और शक्तियो का पवित्र मन और शुद्ध वचन से मनन एव जप करने से मानव का सभी प्रकार का त्राण होता है और उसमे अपार बल का सचय होता है। "शब्दो में सम्पुटित दिव्यता ही मन्त्र है। मन्त्र के निम्नलिखित अग होते है—मन्त्र का एक अंग ऋषि होता है। जिसे इस मन्त्र के द्वारा सर्वप्रथम आत्मानुभूति हुई और जिसने जगत् को यह मन्त्र प्रदान किया। मन्त्र का द्वितीय अग छन्द होता है जिससे उच्चारण विधि का अनुशासन होता है। मन्त्र का तृतीय अग देवता है जो मन्त्र का अधिष्ठाता है। मन्त्र का चतुर्थ अग बीज होता है जो मन्त्र को शक्ति प्रदान करता है। मन्त्र का पचम अग उसकी समग्र शक्ति होती है। यह शक्ति ही मन्त्र के शब्दों की क्षमता है। ये सभी मिलकर मानव को उपास्य देवता की प्राप्ति करवा देते हैं।"[1] मन्त्र केवल आस्था पर आधारित नही है। इनमें कोरी कपोल-कल्पना या चमत्कार उत्पन्न करने की प्रवृत्ति नही है। मन्त्र वास्तव मे प्रवृत्ति की ओर नहीं अपितु निवृत्ति की ओर ही मानव की चित्त-वृतियो को निर्दिष्ट करते है। मन्त्रविज्ञान को समझकर ही मन्त्र क्षेत्र मे आना चाहिए। "शब्द और चेतना के घर्षण से नई विद्युत तरंगे उत्पन्न होती है। मन्त्रविज्ञान इसी घार्षणिक विद्युत ऊर्जा पर आधारित है।"[2] मन्त्र से वास्तव मे

1. 'कल्याण'—उपासना अक—1974
2. 'योग से शान्ति की खोज' पृ० 30—साध्वी राजीमती

हम शक्ति बाहर से प्राप्त नही करते अपितु हमारी सुषुप्त अपराजेय चैतन्य शक्ति जागृत एवं सक्रिय होती है।

मन्त्र का व्युत्पत्त्यर्थ एवं व्याख्या :

मन्त्र शब्द सस्कृत भाषा का शब्द है। इस शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से की जा सकती है और कई अर्थ भी प्राप्त किए जा सकते है—

मन्त्र शब्द 'मन' धातु (दिवादि गण) मे ष्ट्न (त्र) प्रत्यय तथा घञ् प्रत्यय लगाकर बनता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ होता है—जिसके द्वारा (आत्मा का आदेश) अर्थात् स्वानुभव या साक्षात्कार किया जाए वह मन्त्र है।[1]

दूसरी व्युत्पत्ति मे मन् धातु का 'विचारपरक' अर्थ लगाया जा सकता है और तब अर्थ होगा—मन्त्र वह है जिसके द्वारा आत्मा की विशुद्धता पर विचार किया जाता है।

तीसरी व्युत्पत्ति में मन् धातु को सत्कारार्थ मे लेकर अर्थ किया जा सकता है—मन्त्र वह है जिसके द्वारा महान् आत्माओ का सत्कार किया जाता है।

इसी प्रकार मन् को शब्द मानकर (क्रिया न मानकर) त्राणार्थ मे त्र प्रत्यय जोडकर पुल्लिङ्ग मन्त्रः शब्द बनाने से यह अर्थ प्रकट होता है कि मन्त्र वह शब्द शक्ति है जिससे मानव मन को लौकिक एव पारलौकिक त्राण (रक्षा) मिलता है।[2]

मन्त्र वास्तव में उच्चरित किए जाने वाला शब्द मात्र नही है. उच्चार्यमान मन्त्र, मन्त्र नही है। मन्त्र मे विद्यमान अनन्त एवं अपराजेय अध्यात्म शक्ति परमेष्ठी शक्ति एव दैवी शक्ति ही मन्त्र है। अतः मन्त्र शब्द मे मन् + त्र ये दो शब्द क्रमशः मनन-चिन्तन और त्राण अर्थात् रक्षा और शुभ का अर्थ देते है।[3] मनन द्वारा मन्त्र पाठक को

1. मन् धातु के अनेक अर्थ है—यथा—(1) आदेश ग्रहण, (2) विचार करना, (3) सम्मान करना।
2. मन् शब्द को सज्ञा मानने पर उसका अर्थ होगा—मानव-मन को जिससे त्र अर्थात् त्राण (रक्षा एव शान्ति) मिले।
3. "वर्णात्मको न मन्त्रो, दशभुजदेहो न पञ्चवदनोऽपि। सकल्पपूर्व कोटी, नादोल्लासो भवेन्मन्त्रः॥" महार्थ मजरी— पृ० 102

पच परमेष्ठी के महान् गुणो की अनुभूति होती है। इससे शक्तिशाली होकर वह कष्टप्रद सासारिकता से त्राण पाने मे समर्थ होता है।

मन्त्र शब्द का एक विशिष्ट अर्थ भी ध्यान देने योग्य है। मन अर्थात् चित्त की त्र अर्थात् तृप्त अवस्था अर्थात् पूर्ण अवस्था अर्थात् आत्म साक्षात्कार की परमेष्ठी तुल्य अवस्था ही मन्त्र है। वास्तव मे चित् शक्ति चैतन्य की सकुचित अवस्था मे चित्त बनती है और वही विकसित होकर चिति (विशुद्ध आत्मा) बनती है।* "चित्त जब बाह्य वेद्य समूह को उपसहृत करके अन्तर्मुख होकर चिद्रूपता के साथ अभेद विमर्श सम्पादित करता है तो यही उसकी गुप्त मन्त्रणा है जिसके कारण उसे मन्त्र की अभिधा मिलती है। अत मन्त्र देवता के विमर्श मे तत्पर तथा उस देवता के साथ जिसने सामरस्य प्राप्त कर लिया है ऐसे आराधक का चित्त ही मन्त्र है, केवल विचित्र वर्ण सघटना ही नही।" वैदिक परम्परा के अन्तर्गत समस्त मन्त्रो को त्रितत्त्वों का सगठित रूप स्वीकार किया गया है। इन तीनो तत्त्वो के बिना किसी वस्तु और मन्त्र की रचना हो ही नही सकती। ये तीन तत्त्व है—शिव, शक्ति और अणु (आत्मा)।

"शिवात्मकाः शक्तिरूपाज्ञया मन्त्रास्तथाणवा।
तत्वत्रय विभागेन, वर्तन्ते ह्यमितौजसः॥"

नेत्र तन्त्र—19

मन्त्रो के भेद—

वैदिक परम्परा और श्रमण (जैन) परम्परा मे मन्त्रो का सर्वप्रथम आधार मूलमन्त्र अथवा महामन्त्र है। महामन्त्र के गर्भ से ही अन्य मन्त्र जन्म लेते है। ओम् (ॐ) पर दोनो परम्पराओ की गहरी आस्था है। इसका अर्थ अपने-अपने ढग से दोनो ने किया है। शारदातिलक, राघव भट्टीया एवं सौभाग्य भास्कर ग्रन्थो में वैदिक (शैव-वैष्णव) परम्परा के मन्त्रो का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। डॉ० शिवशकर अवस्थी ने उक्त ग्रन्थों की सहायता से मन्त्र-भेदो को विद्वत्तापूर्ण ढग से प्रस्तुत किया है। मन्त्रो को प्रमुख पाच वर्गों में विभाजित किया गया है—

* 'मन्त्र और मातृकाओ का रहस्य' पृ० 190-191—ले० डॉ० शिवशकर अवस्थी।

1 पुरुष मन्त्र, स्त्री मन्त्र, नपुसक मन्त्र।
2. सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, अरि मन्त्र।
3 पिण्ड, कर्तरी, बीज, माला मन्त्र।
4 सात्विक, राजस, तामस।
5 साबर, डामर।

पुरुष मन्त्र उन्हे कहते है जिनका देवता पुरुष होता है।[1] पुरुष देवता के मन्त्र सौर कहलाते है और स्त्री देवता से सम्बन्ध रखने वाले मन्त्र सौम्य। जिन मन्त्रो का देवता स्त्री होती है उन्हे विद्या कहते है। सामान्यतया तो सभी को मन्त्र ही कहा जाता है।[2] जिन मन्त्रो के अन्त में 'हु' और फट्' रहना है उन्हे पु० मन्त्र, और दो रू इस वर्ण से जिस मन्त्र की समाप्ति हो उसे स्त्री मन्त्र कहते है।[3] नमः से समाप्त होने वाले मन्त्र नपुसक मन्त्र कहलाते है। 'प्रयोगसार' का मत इससे कुछ भिन्न है। उनके अनुसार वषट् और फट् से समाप्त होने वाले मन्त्रों को पुरुष, वौषट् और स्वाहा से स्त्री तथा 'हु' नम· से समाप्त होने वाले मन्त्रों को नपुसक कहा गया है। एक अक्षरी मन्त्र पिण्ड मन्त्र, दो अक्षरो वाले कर्तरी मन्त्र और तीन से लेकर नौ वर्गो तक के मन्त्र बीज मन्त्र कहलाते है। इससे बीस वर्ण पर्यन्त के मन्त्र, मन्त्र के ही नाम से जाने जाते है। इससे अधिक वर्ण सख्या वाले मन्त्र माला मन्त्र कहलाते है। इनके अतिरिक्त मन्त्रो के छिन्न, उद्ध, शक्तिहीन आदि शताधिक अन्य भेद भी होने है। ये सभी यहा प्रासगिक नही है। उक्त विवरण केवल तुलनार्थ एव ज्ञानार्थ उद्धृत किया गया है।

मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र—इन तीनो की सानुपातिक सयुक्त क्रिया ही किसी साधक को पूर्णता तक पहुचाती है। केवल मन्त्र की साधना

1 सौरा पु० देवता मन्त्रास्ते च मन्त्रा प्रकीर्तिता।
सौम्या स्त्री देवतास्तद्वद्विद्यास्ते इति विश्रुत ॥
(शारदा तिलक—राघवी टीका पृ० 79)

2 पुस्त्री नपुसकात्मानो मन्त्राः सर्वे समीरिता।
मन्त्रा पुदेवता ज्ञेया विद्या स्त्रोदेवता स्मृता ॥58॥
(शारदा तिलक तन्त्र 2 पटल)

3 पु० मन्त्राः हुम्फडान्ता स्यु द्विठान्ताश्च स्त्रियो मता।
नपुसका नमोऽताः स्युरित्युक्ताः मन्त्रास्त्रिधा ॥58॥ वही

से आशिक लाभ ही होगा। मन्त्र कुछ विशिष्ट परम प्रभावी शब्दो से निर्मित वाक्य होता है। कभी-कभी यह केवल शब्द मात्र ही होता है। यन्त्र वह पात्र (धातु निर्मित, पत्र या कागज) है जिसमे सिद्ध मन्त्र टकित, अकित या वेष्टित रहता है। यह एक साधन है। तन्त्र का अर्थ है विस्तार करने वाला अर्थात् मन्त्र की शक्ति को रासायनिक प्रक्रिया जैसा विस्तार एव चमत्कार देने वाला। मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र ये तीनो भीतर से बाहर आने की प्रक्रिया हैं— बिन्दु के सिन्धु मे बदलने का क्रम है। मन मे स्थित मन्त्र मुख मे आकर यन्त्रस्थ हो जाता है और वार्णा मे प्रस्फुटित होकर (तन्त्रित होकर) मुद्रित-प्रकाशित हो जाता है।

सम्पूर्ण मन्त्रों की सख्या सात करोड मानी गयी है। वैदिक परम्परा के अनुसार सभी मन्त्र शिव और शक्ति द्वारा कीलित है। बौद्ध परम्परा मे भी मन्त्रों का और तन्त्रों का सुदीर्घ चक्र है। जैन शास्त्रों में मन्त्रों की अति प्राचीन एवं विशाल परम्परा है। मन्त्रकल्प, प्रतिष्ठाकल्प, चक्रेश्वरीकल्प, ज्वालामालिनीकल्प, पद्मावतीकल्प, सूरिमन्त्रकल्प, वाग्वादिनीकल्प, श्रीविद्याकल्प, वर्द्धमानविद्याकल्प रोगापहारिणीकल्प आदि अनेक कल्प ग्रन्थ है। ये सभी मन्त्र एवं तन्त्र प्रधान ग्रन्थ है।

मन्त्र शास्त्रों में तीन मार्गों का उल्लेख है। ये हैं—दक्षिण मार्ग, वाम मार्ग और मिश्र मार्ग। **दक्षिण मार्ग**—सात्विक देवता की सात्विक उद्देश्य से और सात्विक उपकरणों से की गई उपासना दक्षिण उपासना या सात्विक उपासना कहलाती है। **वाम मार्ग**—पच मकार-मदिरा, मांस, मैथुन, मत्स्य, मुद्रा—इनके आधार पर भैरवी चक्रों की योजना होती थी। **मिश्र मार्ग**—इसके अन्तर्गत परोक्ष रूप से पंचमकारो को तथा दक्षिण मार्ग की उपासना पद्धति को स्वीकार किया गया है। वास्तव मे यह मार्ग व्यर्थ ही रहा। मार्ग तो दो ही रहे। मन्त्र शास्त्र मे प्रमुख तीन सम्प्रदाय है—केरल, काश्मीर और गौण। वैदिक परम्परा केरल-सम्प्रदाय के आधार पर चली। बौद्धों में गौड सम्प्रदाय का प्रभाव रहा। जैनो का अपना स्वतन्त्र मन्त्र शास्त्र है परन्तु काश्मीर परम्परा का जैनो पर व्यापक प्रभाव है।

मन्त्र मे स्वरूप-विवेचन से यह बात सुस्पष्ट है कि मन्त्र, अर्थ और शब्द के संश्लिष्ट माध्यम से हमें अध्यात्म मे ले जाता है अर्थात्

हम अपने मूल स्वरूप में उतरने लगते है। यह निर्विकार अवस्था जीवन की चरम उपलब्धि है। मन्त्र की भाषा, नादशक्ति और ध्वनि तरंग का सामान्य जीवन की भाषा से और व्याकरण की भाषा से बहुत अन्तर है। सामान्य भाषा और व्याकरण की भाषा तो सार्थक और सीमित होती है, वह मन्त्र की अनन्त अर्थ महिमा और ध्वनि विस्तार को धारण नही कर सकती। यही कारण है कि मन्त्र में उसकी ध्वन्यात्मकता का बहुत महत्त्व है। ध्वनि का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मे बहुत अधिक अर्थ है। श्री जैनेन्द्रजी ने कहा है कि सार्थक भाषा मे मन्त्र शक्ति कठिनाई से उत्पन्न हो सकती है, क्योंकि वह अर्थ तक सीमित रहती है। जिसमे ध्वनि और नाद है यह असीमित है। उसमें अनन्त शक्ति भी डाली जा सकती है।

मन्त्रविज्ञान :

मन्त्रविज्ञान से तात्पर्य है मन्त्र को समझने की विशिष्ट ज्ञानात्मक प्रक्रिया। यह प्रक्रिया विश्वास और परम्परा को त्यागकर ही आगे बढती है। इस विज्ञान का कार्य है मन्त्र के पूर्ण स्वरूप और प्रभाव को प्रयोग के धरातल पर घटित करके उसकी वास्तविकता स्थापित करना। जब तक अध्ययनकर्ता तटस्थ एव रचनात्मक दृष्टि से सम्पन्न नही है तब तक वह इस प्रक्रिया में सफल नही हो सकता। इसी प्रकार मन्त्रविज्ञान का दूसरा महत्त्वपूर्ण विज्ञान रहस्य है उसमे निहित (मन्त्र में निहित) अर्थ, भाषा, भाव एवं चैतन्य के ऊर्ध्वीकरण की निधि को विभिन्न स्तरों पर समझना। आशय यह है कि मन्त्र के बहुमुखी चैतन्य की गुणात्मक व्यवस्था को व्यवस्थित होकर समझना मन्त्र-विज्ञान है।

अनुभूति-जन्य ज्ञान निश्चित रूप से चिन्तन और सिद्धान्त-प्रसूत ज्ञान से अधिक विश्वसनीय, प्रत्यक्ष एव व्यापक है। मन्त्रविज्ञान मे भी हम ज्यों-ज्यों मन्त्र की गहराई मे उतरेंगे हमारा बौद्धिक एव सैद्धान्तिक चिन्तन छूटता जाएगा और एक विशाल अनुभूति हम में उभरती जाएगी। मन्त्रविज्ञान वास्तव में विश्लेषण से सश्लेषण की प्रक्रिया है। अहंकार का पूर्णत्व में विलय मन्त्रविज्ञान द्वारा स्पष्ट होता है। अतः मन्त्रविज्ञान को समझने के चार स्तर हैं—1. भाषा का

स्तर, 2. अर्थ का स्तर, 3 ध्वनि का स्तर—नाद का स्तर, व्यजना शक्ति का स्तर, 4 सम्मिश्रण—फलितार्थ।

भाषा का स्तर :

यदि उदाहरण के लिए हम णमोकार मन्त्र को ही ले तो जब पाठक या भक्त पहली बार मन्त्र को पढता है या सुनता है तो वह सामान्यतया मन्त्र का प्रचलित भाषा रूप ही जान पाता है और उसके साथ-साथ सामान्य अर्थ-बोध को जानने के लिए कुछ सचेष्ट होता है। यहा भाषा का अर्थ है रचना का शरीर और उससे प्रकट रूपात्मक या ध्वन्यात्मक सम्मोहन। यह किसी रचना को जानने की पहली और सामान्य स्थिति है।

अर्थ का स्तर :

दूसरी, तीसरी, चौथी बार जब हम मन्त्र को पढते या जपते है और समझने का प्रयत्न करते है तो हम शब्दो के स्थूल अर्थ के परिवेश मे—परिचित अर्थ के परिवेश मे चले जाते है। णमोकार मन्त्र मे अर्थ के स्तर पर अरिहन्तो को नमस्कार हो, सिद्धो को नमस्कार हो आदि—अर्थ से हम परिचित होते है। इससे हमारा मन्त्र से कुछ गहरा नाता जुडता है, परन्तु अभी पूर्णता दूर है। यह स्तर तो एक साधारण एव अविकसित मस्तिष्क का है। अविकसित मानसिकता 50 वर्ष के व्यक्ति मे भी हो सकती है। दूसरी ओर 10 वर्ष का बालक भी प्रत्युत्पन्नमति के कारण मानसिक स्तर पर विकसित हो सकता है। यह तो हम नित्यप्रति देखते ही है कि कई व्यक्ति जीवन भर अर्थ के स्थूल स्तर मे कोल्हू के बैल की तरह घूमते रहते है। उनकी मानसिकता का एक स्तर बन जाता है।

ध्वनि का स्तर :

काव्य शास्त्र शब्द शक्तियो का विवेचन है। ये शब्द शक्तिया तीन है—अभिधा, लक्षणा और व्यजना। सौन्दर्य प्रधान एव जीवन की गम्भीर अनुभूति के विषय को प्राय व्यजना द्वारा ही प्रकट किया जाता है। इससे उसकी सुन्दरता बढती है और मूल भाव अति प्रभावी

होकर प्रकट होता है। हर व्यक्ति व्यंजना को ग्रहण नहीं कर पाता है। व्यंजना को ही प्रकारान्तर से ध्वनि कहा गया है।

श्री रामचरित मानस के बालकाण्ड में सीताजी की एक सखी जनक वाटिका में आए हुए राम और लक्ष्मण को देखकर आनन्दमग्न होकर सीता और अन्य सखियों से कह रही है—

"देखन बाग कुंअर दोउ आए, वय किसोर सब भांति सुहाए।
श्याम गौरि किमि कहौं बखानी, गिरा अनयन नयन बिनु वानी॥"*

अर्थात् दो कुमार बाग देखने आए है। उनकी किशोरावस्था है, वे प्रत्येक दृष्टि से सुन्दर है। वे श्याम और गौरवर्ण के है। उनका वर्णन मैं कैसे करू ? वाणी के नैन नही और नैन बिना वाणी के है। इस चौपाई का सामान्य अर्थ तो स्पष्ट है ही, परन्तु चतुर्थ चरण मे जो भाव व्यजना द्वारा व्यक्त हुआ है, उसे केवल मर्मज्ञ ही समझ सकते है। राम और लक्ष्मण के लोकोत्तर रूप को आखो ने देखा है—अतः आखे ही पूरी तरह बना सकती है, परन्तु आंखो के पास जिह्वा नही है, कैसे कहे ? उधर जिह्वा ने देखा नही है—देख ही नही सकती—कैसे बोले ? सब कुछ कह दिया और लगता है कुछ नही कहा। राम-लक्ष्मण का सौन्दर्य अनिर्वचनीय है, मनसा-वाचा परे है। अनुभूति का विषय है। इस ध्वन्यात्मकता को समझे बिना उक्त चरण का आनन्द नही आ सकता। यही बात मन्त्र की भाव गरिमा मे है। आम आदमी अर्थ के साधारण स्तर की ही जीवन भर परिक्रमा करता रहता है और उसका मन्त्र की आत्मा से तादात्म्य नहीं हो पाता है।

ध्वनि का जहा नादमूलक अर्थ है वहा मन्त्र के उच्चारण स्तरों का ध्यान रखकर ही उसका पूरा लाभ लिया जा सकता है। मन्त्र विज्ञान मे भक्त की चेतना और मन्त्रोच्चार से उत्पन्न ध्वनि तरग जब निरन्तर घर्षित होते है तो समस्त शरीर, मन और प्राणो मे एक अद्भुत कम्पन आस्फालित होता है। धीरे-धीरे इस कम्पन से एक वातावरण—मन्त्रमयता का वातावरण निर्मित होता है और भक्त उसमें पूर्णतया लीन हो जाता है। यह लीन होने की सम्पूर्णता ही मन्त्र का साध्य है।

---

* रामचरित मानस—बालकाण्ड—पृ० 232

हमारे आचार्यो, कवियों और महान् पुरुषों ने वाणी की महिमा का बहुविध गान किया है—

कबीर—ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होय ॥

तुलसी—तुलसी मीठे वचन तें सुख उपजत चहुं ओर।
वशीकरण इक मन्त्र है, तज दे वचन कठोर ॥

शब्द का दुखात्मक प्रभाव इतना अधिक होता है कि आदमी जीते जी मर जाता है, और शब्द के सुखात्मक प्रभाव में आदमी मरता हुआ भी जी उठता है। शब्द ब्रह्म की महिमा अपार है। कहा है कि तलवार का घाव भर सकता है लेकिन वाग्बाण का कभी नहीं। स्पष्ट है कि वाणी में अमृत और विष दोनों है। समस्त विश्व पर ध्वनि का प्रभाव देखा जा सकता है। वाणी के घातक प्रभाव पर एक प्रसग प्रस्तुत है—

एक बार लदन की एक प्रयोगशाला में वाणी और मनोविज्ञान के दवाव पर एक प्रयोग किया गया। एक व्यक्ति के शरीर के पूरे खून को क्रय किया गया। मूल्य यह था कि उसके परिवार का पूरा भरण-पोषण सरकार करेगी। उस व्यक्ति को लिटा दिया गया और पीछे एक नली द्वारा खून को बूद-बूद करके निकालने का काम शुरू हुआ। जब काफी समय हो गया तो डाक्टरो ने कहा कि इतने खून के निकलने के बाद तो इस व्यक्ति को मर ही जाना चाहिए था, आश्चर्य है, शायद दो-चार मिनट में मर जाएगा। ये शब्द सुनते ही वह आदमी तुरन्त मर गया। वास्तव में उसके शरीर से रक्त की एक बूद भी नहीं निकाली गयी थी। बस उसके पीछे से पानी की बूदे गिरायी जा रही थी। यह मन पर वाणी का और मानसिकता का दवाव था।

मन्त्र की सम्पूर्ण ध्वन्यात्मकता शरीर के कण-कण में व्याप्त होकर आत्मा के भीतरी लोक से सम्पर्क करती है और उसे उसकी विशुद्धता का लोकोत्तर दर्शन कराती है। यह बात सुस्पष्ट है कि मन्त्र विज्ञान में आस्था, परम्परा और इतिहास की आत्मा में प्रवेश करके उसे ज्ञान और विवेक के—प्रत्यक्ष प्रयोग के धरातल पर लाकर स्थिरीकरण कराया जाता है। वैज्ञानिक धरातल पर परीक्षित करके ही कुछ बुद्धि जीवियों में आत्मा का उदय होता है। जैन धर्म में विश्रुत पंच नमस्कार

महामन्त्र जहां विशुद्ध विश्वास का विषय रहा है, वहां आज वह विज्ञान की कसौटी पर भी पूरी तरह चौकस उतरा है। उसकी भाषा, उसकी अर्थवत्ता, उसकी भावसत्ता और उसकी ध्वन्यात्मकता को विधिवत् समझकर उसमे दीक्षित होना अधिकाधिक श्रेयस्कर है। पूर्ण तादात्म्य की अवस्था मे मौन की महत्ता सुविदित ही है। एक महान् व्यक्ति के मौन में सैकडो व्याख्यानों की शक्ति होती है। अतः मन्त्र की सच्ची आराधना उसके मनन में है। चित्त की पूर्ण विशुद्धता के साथ किया गया मनन और भाव-निमज्जन मन्त्र विज्ञान की कुजी है।

मन्त्र धर्म का बीज है। बीज में वृक्ष के दर्शन करने की क्षमता नर जन्म की समग्र सार्थकता है—

धम्मो मंगल मुक्तिकण्ठ, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमस्सन्ति, जस्स धम्मे सया मणो॥

धर्म उत्कृष्ट मगल है, यह अहिसा, सयम और तप रूप है। जिस मानव का मन इस धर्म मे सदा लीन है, उसे देवता भी नमस्कार करते है।

मन्त्र को शब्द और ध्वनि के स्तर पर वैज्ञानिक प्रक्रिया से भी समझा जा सकता है अतः मन्त्र विज्ञान को शब्द विज्ञान ही समझना चाहिए। मानव शरीर का निर्माण विभिन्न तत्त्वों से हुआ है। उसमें दो चीज काम कर रही हैं। सूर्य-शक्ति से हमारे अन्दर विद्युत शक्ति काम कर रही है इसी प्रकार दूसरा सम्बन्ध है सोमरस प्रदाता चन्द्रमा से। इससे हमारा मैग्नेटिक करेण्ट काम कर रहा है। इस मैग्नेटिक करेण्ट की सहायता से मानव के शरीर और मास-पेशियो तक पहुचा जा सकता है। किन्तु मन की अनन्त गहराई और द्रव्य का शक्ति-बीज इस करेण्ट की पकड से परे है। इसके लिए हमारे प्राचीन ऋषियो, मुनियो और महात्माओ ने दिव्य शक्ति को आविष्कृत किया। यह दिव्य शक्ति दिव्य कर्ण है। इससे हम सामान्य मन को सुन सकते हैं और सुना भी सकते है। जिस प्रकार समुद्र में एक केबिल डालकर एक-दूसरे के सवाद को दूर तक पहुचाया जा सका और बाद मे इसी से तार का और फिर बेतार के तार का मार्ग भी आविष्कृत हुआ। आज तो आप चन्द्रलोक तक अपनी बात प्रेषित कर सकते हैं, बात प्राप्त कर सकते हैं। अमेरिका आदि में एक बहुत बड़ा सेटलाइट स्थिर किया

गया है। समस्त संवाद वहा इकट्ठा हो जाता है और उसे चन्द्रमा तक भेज दिया जाता है, फिर वहा से अलग-अलग स्थानो को सवाद भेजे जाते है। इसका आशय यह है कि हम जो शब्द बोलते है उनको पकड़ा जा सकता है, पुन प्रस्तुत किया जा सकता है। उनको गन्तव्य तक पहुचाया जा सकता है। परन्तु विश्व भर की सभी ध्वनिया आकाश-तरंगों मे मिलकर कही भटक गयी है—वे अब भी है और उन्हे पकडा जा सकता है। यह भी सम्भव है कि आकाश मे बिखरी हुई अरिहन्तो और तीर्थकरो की वाणी भी एक दिन विज्ञान की सहायता से हम सुन सके। इसी धरातल पर अध्यात्म शक्ति की अति विकसित अवस्था मे हम मन्त्र के (बेतार के तार) के माध्यम से अरिहन्तो और तीर्थकरो का साक्षात्कार भी कर सकते है। एक दिव्य कर्ण भी विकसित कर सकते है जिससे दिव्य ध्वनि को सुना जा सके। वाणी या भाषा के जो चार स्तर है (बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा) वे भी मन्त्र विज्ञान की ध्वनिमूलकता का समर्थन करते है। भाषा अपनी भावात्मकता से जन्म लेकर स्थूल शब्दो मे ढलती है और फिर धीरे-धीरे अन्तत उसी भावात्मकता मे लीन हो जाती है।

मन्त्र विज्ञान मे शब्द की महत्ता को हम समझ रहे है। आखिर ये शब्द, यह भाषा न जाने कितने स्रोतो से बने हैं, यह ठीक है। किन्तु जो मूलभूत बीज शब्द एव वर्ण है ये तो वस्तुक्रिया से ही जन्मे है। अर्थात् वास्तव मे जब तक हमारा आशय (विचार या भाव) शब्द या ध्वनि मे ढलकर आकार ग्रहण नही करता तब तक हम उसे अव्यक्त भाषा कह सकते है। अत. स्पष्ट है कि भाषा या ध्वनि का हमारे मूल मानस से सीधा-भीतरी और गहरा सम्बन्ध है।

किसी भी द्रव्य की ऊर्जा को पकडने के लिए और दूसरो तक पहुचाने के लिए, हमे उस वस्तु मे विद्यमान विद्युत-क्रम को समझना होगा। देखना होगा कि उससे किस प्रकार की क्रिया-तरगे बह रही है। इसके लिए प्राचीन ऋषियो ने एक विधि निकाली। उन्होने अग्नि को जलते हुए देखा। अग्नि की तीव्र लौ से 'र' ध्वनि का उन्होने साक्षात्कार एव श्रवण किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुचे कि अग्नि से 'र' ध्वनि उत्पन्न होती है और 'र' से अग्नि उत्पन्न की जा सकती है। बस 'र' अग्नि बीज के रूप मे मान्य हो गया। इसी प्रकार पृथ्वी की स्थूलता

से 'लं' ध्वनि का निर्माण होता है। कोई तरल पदार्थ जब स्थूल होने की प्रक्रिया से गुजरता है तो 'लं' ध्वनि होती है। जल प्रवाह से 'वं' ध्वनि प्रकट होती है। 'व' ही जल का आधार है। 'व' से जल भी पैदा किया जा सकता है और जल से 'व' ध्वनि पैदा होती ही है। तत्त्वो के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि के समस्त क्रियाकलापों में ध्वनि सर्वोपरि है। रडार आदि का आविष्कार इसी प्रक्रिया के बल पर हुआ। मन्त्रवादियों और मन्त्रसृष्टाओ ने इसी तथ्य को ध्यान मे रखकर मन्त्र रचना की थी। तत्त्वो की शक्ति उनकी क्रिया मे ही प्रकट होती है। वर्णमाला मे शक्ति स्वरो मे है। व्यजन मूल हैं किन्तु वे स्वरों की सहायता पाकर ही सक्रिय होते हैं। स्वत वे कुछ नही करते या कर पाते। यही कारण है कि व्यजनो को योनि कहा गया है और स्वरो को विस्तारक कहा गया है। स्वरो से सयुक्त होते ही व्यजन उद्दीप्त हो उठते है। व्यजनो को तत्त्वो के धरातल पर पाच वर्गों मे विभाजित किया गया है। समान धर्मिता के कारण तत्त्वो और वर्णो की यह व्यवस्था की गयी—

पृथ्वी तत्त्व	क, च, ट, त, प	प्रथम अक्षर
जल तत्त्व	ख, छ, ठ, थ, फ,	द्वितीय अक्षर
अग्नि तत्त्व	ग, ज, ड, द, ब	तृतीय अक्षर
वायु	ध, झ, ढ, घ, भ	चतुर्थ अक्षर
आकाश	ङ, ञ, ण, न, म	पचम अक्षर

इस प्रकार वर्णो को शक्ति समुच्चय के साथ पकडा गया। अब आवश्यकता पडी कि शब्दों को जीवन के साथ कैसे जोडा जाए ? सृष्टि के विकास और ह्रास को कैसे समझा जाए ? जीवन की सारी स्थितियों को कैसे समझे ? व्याकरण, दर्शन और भाषा विज्ञान ने अपने ढग से यह काम किया है। सभी शब्द तत्त्वो के मिलन हैं।

मन्त्र विज्ञान की वैज्ञानिकता को समझने के लिए हम महामन्त्र णमोकार के प्रथम परमेष्ठी वाची अर्हं (अरिहताण) को ले ले। अह मूल शब्द था। अह मे अ प्रपञ्च जगत् का प्रारूप करने वाला है और 'ह' उसकी लीनता का द्योतक है। अहं में अन्त में है बिन्दु (ं) यह लय का प्रतीक है। बिन्दु से ही सृजन है और बिन्दु में ही लय है। यह प्रश्न उठता है कि सृजन और मरण की यह यान्त्रिक क्रिया है इसमें जीवन-

शक्ति का अभाव है—अर्थात् जीवन शक्ति को चैतन्य देने वाली अग्नि शक्ति का अभाव है। अतः ऋषियो ने अहं को अर्हं का रूप दिया—उसमे अग्नि शक्तिवाची 'र' को जोडा। इससे जीवात्मा को उठकर परमात्मा तक पहुचने की शक्ति प्राप्त हुई। अतः अर्हं का विज्ञान बडा सुखद आश्चर्य प्रदान करने वाला सिद्ध हुआ। 'अ' प्रपञ्च जीव का बोधक—बन्धन बद्ध जीवन का बोधक और 'ह्' शक्तिमय पूर्ण जीव का बोधक है। लेकिन 'र'—क्रियमान क्रिया से युक्त-उद्दीप्त और परम उच्च स्थान मे पहुचे परमात्व तत्त्व का बोधक है।

विभिन्न कार्यो के लिए शब्दो को मिलाकर मन्त्र बनाए जाते है। मन्त्रो के प्रकार, प्रयोजन, प्रभाव अनेक है। उनको विधिवत् समझने और जीवन मे उतारने का सकल्प होने पर ही यह मन्त्र विज्ञान स्पष्ट होगा—कार्यकर होगा। जिस प्रकार रसायन शास्त्र मे विभिन्न पदार्थों के आनुपातिक मिश्रण से अद्भुत क्रियाए और रूप प्रकट होते है, उसी प्रकार शब्दो की शक्ति समझकर उनका सही मिश्रण करने से उनमें ध्वसात्मक, आकर्षक, उच्चाटक, वशीकरणात्मक एव रचनात्मक शक्ति पैदा की जाती है—मन्त्रो मे यही बात है। मन्त्र सूक्ष्म रूप है—बीज रूप है जिससे बाह्य वस्तु रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है, तो दूसरी ओर लोकोत्तर सुख के द्वार भी खुलते है।

मन्त्र आत्म-ज्ञान और परमात्म सिद्धि का मूल कारण है। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जब ज्ञान हृदयस्थ हो जाए और आचरण में ढल जाए। महात्मा गाधी ने उचित ही कहा है—"अगर यह सही है और अनुभव वाक्य है तो समझा जाए कि जो ज्ञान कंठ से नीचे जाता है और हृदयस्थ होता है, वह मनुष्य को बदल देता है। शर्त यह कि वह ज्ञान आत्म-ज्ञान है।"*

× × ×

"जब कोई सच्चा ही वचन कहता है, और व्यवहार भी ऐसा ही करता है। हम उसका असर रोज देखते है। फिर भी उस मुताबिक न बोलते है न करते हैं।"

ज्ञान आचरण के बिना व्यर्थ है। उसी प्रकार चरित्र की जड

* बापू के आशीर्वाद—पृ० 206-217

विश्वास और ज्ञान पर आधारित होनी चाहिए। अहंकार वास्तविक ज्ञान और व्यवहार ज्ञान का शत्रु है। दुर्बल और विकलाग से भी शिक्षा प्राप्त होती है—

एक अन्धा व्यक्ति रात्रि में दीपक लिए हुए रास्ते पर चला जा रहा था। सामने से आते हुए नवयुवकों का दल उस अन्धे पर व्यंग्य से हंसकर दोला, 'सूरदासजी कमाल कर रहे हो, दीपक लेकर क्यों चल रहे हो?' अन्धे ने कहा, 'यह दीपक आप आंख वालों से बचने के लिए है, क्योकि आप तो मदान्ध होकर चलते हैं, आख पाकर भी अन्धे हैं, मुझसे टकरा सकते है। आशय यह है कि अहंकार ज्ञान का शत्रु है। फिर मन्त्र ज्ञान तो परम निर्मल मन से ही आ सकता है □

णमोकार मन्त्र की ऐतिहासिकता

णमोकार मन्त्र का मूल रचयिता कौन है ? इस सृष्टि का रचयिता कौन है ? णमोकार मन्त्र कब रचा गया ? आदि-आदि प्रश्न उठते ही रहे है । आगे भी उठते ही रहेगे । मानव स्वभाव गुण के साथ प्राचीनता को भी देखता ही है । सहस्रो वर्षो के अनुसधान से यही ज्ञात हो सका है कि यह मन्त्र अनादि-अनन्त है । प्रत्येक तीर्थकर के साथ स्वत प्रादुर्भूत होता है । तीर्थकर इसके माध्यम से धर्म का प्रचार-प्रसार करते है । वास्तव मे यह मन्त्र मूलत ओकारात्मक है । इसका 'ओ' का विकसित रूप ही पचपरमेष्ठी नमस्कार मन्त्र या णमोकार मन्त्र है । यह मन्त्र मातृका रूप है । यह ओम् मे से निकलता है और ओम् मे ही लय हो जाता है । ओकार के प्रति यह नमन भाव जैन मात्र के कण्ठ पर रहता है और प्रत्येक शास्त्र सभा या मगल-कार्य के प्रारम्भ मे पढा जाता है—

ओकारं बिन्दु सयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ओकाराय नमो नमः ।।

अर्थात् बिन्दु सयुक्त ओकार का योगी नित्य ध्यान करते है । काम और मोक्ष दायक ओकार को पुन -पुन नमस्कार हो । इस श्लोक मे 'नित्य' शब्द से इस ओकार की नित्यता प्रकट होती है । ओ अर्धोष्ठ्य ध्वनि है । इसके उच्चारण मे ओष्ठ आधे खुलकर सम्पुट (अर्धसम्पुट) हो जाते है और 'म्' का उच्चारण पूर्ण होते-होते ओष्ठ बन्द हो जाते है । 'म्' का उच्चारण स्थान ओष्ठ है । स्पष्ट है कि 'ओम्' के उच्चारण मे स्वर और स्पर्श व्यजनो का समावेश प्रतीकात्मक रूप से है और वाणी विराम अर्थात पूर्णता की स्थिति भी है ।

अब प्रश्न यह है कि सिद्धान्त और श्रद्धा के साथ इतिहास अपना समाधान चाहता है । इतिहास मे तिथि और घटना का ही महत्व होना है । वास्तव मे तिथियो और घटनाओ का सिलसिलेवार संग्रह ही इतिहास होता है । कानून की भाँति इतिहास भी साक्ष्यजीवी होता है ।

परन्तु इतिहास का इतिहास मानव परम्परा और विश्वास में होता है जिसका मूल प्राप्त कर पाना काफी कठिन ही नही असभव भी है।

फिर भी प्राप्त इतिहास क्या है ? अर्थात् ऋषि, आचार्य अथवा लेखक ने कब इस मन्त्र का उल्लेख किया। रचना कब हुई, यह बताना तो संभव नही है, किसने रचना की, यह भी बता पाना सभव नही है। परन्तु प्राप्त वाङ्मय के आधार पर णमोकार मन्त्र की ऐतिहासिकता पर विचार एक सीमा तक तो किया ही जा सकता है।

"अनादि द्वादशाग जिनवाणी का अंग होने से यह अनादि मूल-मन्त्र कहा जाता है। 'षट्खण्डागम' के प्रथम खण्ड जीवट्ठाड के प्रारम्भ में आचार्य पुष्पदत द्वारा यह मन्त्र मंगलाचरण रूप में अकित किया गया है। जिस पर धवला टीका के रचयिता आचार्य वीरसेन ने इसे परम्परा-प्राप्त निवद्ध मंगल सिद्ध किया है। क्योकि मोक्षमार्ग, उसके उपदेष्टा और साधक भी अनादि से चले आ रहे है। आचार्य शिव कोटि कृत 'भगवती आराधना' की टीका के अनुसार यह मन्त्र द्वादशाग रचयिता गणधर कृत है। तीर्थकर और गणधर अनादिकाल से होते चले आ रहे है।" इस मान्यता के आधार पर महावीर के गणधर गौतम के समय और कर्तृत्व के साथ महामन्त्र को जोड़ा गया है। गौतम गणधर का समय ई० पू० का ही है।

सज्ज स्वामी ने चौदह आगमो का सार लेकर णमोकार मन्त्र की खोज की, यह भी एक मान्यता है। महाराजा खारवेल तथा कलिग की गुफाओ मे महामन्त्र के दो पद टकित है—णमो अरिहंताण, णमो सिद्ध। इससे भी रचयिता और समय का पता नही लगता है। खारवेल का समय ई० पू० द्वितीय शती का है। शिला-लेख का समय 152 ई० पू० है।

"आचार्य भद्रबाहु के अनुसार नंदी और अनुयोग द्वार को जानकर तथा पचमगल को नमस्कार कर सूत्र का प्रारम्भ किया जाता है। संभव है इसीलिए अनेक आगम-सूत्रों के प्रारम्भ में पंच नमस्कार महा-मन्त्र लिखने की पद्धति प्रचलित हुई। जिनभद्रगणी श्रमण ने उसी आधार पर नमस्कार महामन्त्र को सर्वश्रुतान्तर्गत बतलाया। उनके अनुसार पंच नमस्कार करने पर ही आचार्य सामायिक और क्रमशः शेष श्रुतियो को पढाते थे। प्रारम्भ मे नमस्कार मन्त्र का पाठ देने और

उसके बाद आवश्यक का पाठ देने की पद्धति थी।...नमस्कार मन्त्र को जैसे सामायिक का अंग बताया गया, वैसे किसी अन्य आगम का अग नही बताया गया है। इस दृष्टि से नमस्कार महामन्त्र का मूलस्रोत सामयिक अध्ययन ही सिद्ध होता है। आवश्यक या सामयिक अध्ययन के कर्त्ता यदि गौतम गणधर को माना जाए तो पंच नमस्कार महामन्त्र के कर्त्ता भी गौतम गणधर ही ठहरते हैं।"[1]

"विगत ढाई हजार वर्षो से इसे लेकर विपुल साहित्य प्रकाश मे आया है, जिसकी जानकारी जन-साधारण को तो क्या, विद्वानो को भी पूरी तरह नही है।"[2] इस मत से भी यही ज्ञात होता है कि महामन्त्र पर लगभग ढाई हजार वर्षो से विपुल साहित्य प्रकाशित हुआ है, परन्तु इसकी जन्म-तिथि और जनक के विषय मे यह मत भी मौन है। इसमे प्रकान्तर से मन्त्र को अनादि माना गया है।

प० नेमीचन्दजी ज्योतिषाचार्य ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक—'मगल-मन्त्र णमोकार एक अनुचिन्तन' मे महामन्त्र णकोकार के अनादित्व-सादित्व पर विचार किया है। उनके अनुसार—"णमोकार मन्त्र अनादि है। प्रत्येक कल्प काल मे होने वाले तीर्थकरो के द्वारा इसके अर्थ का और उनके गणधरो के द्वारा इसके शब्दो का निरूपण किया जाता है।.. पंच परमेष्ठी अनादि होने के कारण यह मन्त्र अनादि माना जाता है। इस महामन्त्र मे नमस्कार किये गये पात्र आदि नही, प्रवाह रूप से अनादि है और इनको स्मरण करने वाले जीव भी अनादि है, अत यह मन्त्र भी गुरु-परम्परा से अनादिकाल मे प्रतिपादित होता चला आ रहा है। आत्मा के समान यह अनादि और अविनश्वर है। प्रत्येक कल्पकाल मे होने वाले तीर्थकरो द्वारा इसका प्रवचन होता आया है।" उक्त समस्त विवेचन से यह तथ्य उभर कर आता है कि यह पच नमस्कार महामन्त्र अनादि है। प्रत्येक तीर्थकर अपने युग में इस मन्त्र के अर्थ का विवेचन करते है और फिर उनके गणधर या गणधरो द्वारा उसके शब्दो का विवेचन होता है। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो ही जैन-शाखाए इस मन्त्र को अनादि ही मानती हैं। इस मन्त्र के सम्बन्ध में यह श्लोक प्रसिद्ध है—

अनादि मूल मन्त्रोयं, सर्व विघ्न विनाशन:।
मगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मत:॥

मन्त्र पर अनेकान्त दृष्टि—

महामंत्र णमोकार को अर्थ और भाव तत्व के आधार पर ही अनादि कहा जा सकता है। इसी को हम द्रव्यार्थिक नय भी कहते है। शब्द और ध्वनि के स्तर पर तो इसे सादि मानना ही पड़ेगा। भाषा, ध्वनि, वाक्य तो प्रतिक्षण परिवर्तित होते रहने वाले तत्व हैं। इस मन्त्र में साधु शब्द का प्रयोग है। यह शब्द मुनि-ऋषि शब्दो की तुलना मे नया ही है। अत: द्रव्यार्थिक नय ही प्रमुख होता है—आत्मा होता है, वही निर्णायक तत्व है। पर्याय तो परिवर्तनशील होनी ही है। ध्वनि के स्तर पर इस मन्त्र पर स्वतन्त्र अध्याय मे विचार किया गया है। उससे अधिक स्पष्टता आएगी।

विज्ञान के नित्य नये आविष्कार शीघ्र ही इस तथ्य को प्रमाणित करेंगे कि सभी तीर्थंकरों द्वारा उच्चरित उपदिष्ट वाणी जो चिरकाल से आकाश में व्याप्त थी, रिकार्ड कर ली गयी है। आज हम अनुभव तो करते हैं पर बता नही पाते, प्रमाणित नहीं कर पाते। कारण यह है कि तथ्य नष्ट हो गये है, लुप्त हो गये है और उनका सार सत्य मात्र हमारे पास है। मन्त्र से हमारे समस्त अन्तश्चैतन्य (आभा-मण्डल) मे एक संरचनात्मक विद्युत परिवर्तन होता है। इससे हम सुदूर अतीत और सुदूर भविष्य के भी दर्शन कर समते है। लाखो-करोडों व्यक्तियों का चिन्तन और विश्वास पागलपन नही हो सकता। अवश्य ही महामन्त्र की प्राचीनता और अनादित्व गणितीय पकड की चीज नही है।

आचार्य रजनीश के इस कथन से प्रकारान्तर से हम णमोकार मंत्र की अनादिता की एक सहज झलक पा सकते है—"महावीर एक बहुत बडी संस्कृति के अन्तिम व्यक्ति है—जिस सस्कृति का विस्तार कम-से-कम दस लाख वर्ष है। महावीर जैन विचार और परम्परा के अन्तिम तीर्थंकर है—चौबीसवे। शिखर की, लहर की आखिरी ऊँचाई और महावीर के बाद वह लहर और सस्कृति सब बिखर गयी। आज उन सूत्रों को समझना इसलिए कठिन है, क्योंकि पूरा का पूरा वह वातावरण, जिसमे वे सूत्र सार्थक थे, आज कहीं भी नही हैं। ऐसा समझें कि कल तीसरा महायुद्ध हो जाए। सारी सभ्यता बिखर जाए, सीधी लोगों के पास याददाश्त रह जाएगी कि लोग हवाई जहाजों मे उड़ते थे। हवाई-जहाज तो बिखर जाएंगे, याददाश्त रह जाएगी। यह याददाश्त

हजारो साल तक चलेगी और बच्चे हँसेगे। कहेगे कि कहा है हवाई-जहाज ? जिनकी तुम बात करते हो ? ऐसा मालूम होता है, कहानिया है, पुराण-कथाए है, मिथ हैं।"[3]

णमोकार महामन्त्र की ऐतिहासिकता का सीधा अर्थ है जैन धर्म की ऐतिहासिकता, क्योकि महामन्त्र वास्तव मे जैन धर्म के सभी तत्वों का पुष्कल प्रतीक एव सूत्र है। धर्म का इतिहास सामान्य इतिहास की कसौटी पर नही कसा जा सकता। इसका प्रमाण मानव जाति की आत्मा मे उसके चिर-कालिक विश्वास मे होता है। यह इतिहास भावात्मक ही होता है, रूपात्मक बहुत कम।

"धर्म का स्वतन्त्र इतिहास नही होता। सम्यक् विचार व आचार रूप धर्म हृदय की वस्तु है, जिसका कब, कहा और कैसे उदय, विकास अथवा ह्रास हुआ तथा कैसे विनाश होगा, यह अतिशय ज्ञानी के अतिरिक्त किसी को ज्ञान नही। अत इन्द्रियातीत, अतिसूक्ष्म धर्म का अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए धार्मिक महापुरुषो का जीवन और उनका उपदेश ही धर्म का परिचायक है। धार्मिक मानवो का इतिहास ही धर्म का इतिहास है।"[4]

इस महामत्र की ऐतिहासिकता पर इस दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है कि यह मन्त्र द्रव्यार्थिक नय से अनादि है तो क्या पूरे पच परमेष्ठियो को अर्थ के स्तर पर मत्र मे मूल रूप मे पहली बार मे किया गया होगा, अथवा प्रारम्भ मे केवल अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठी को ही लिया गया और फिर धीरे-धीरे परवर्ती कालो मे बाद के तीन परमेष्ठी मिला लिये गये ? अति प्राचीन या प्राचीनतम उदाहरण या शिलालेख तो यही सिद्ध करते है कि अरिहन्त और सिद्धो को ही प्रारम्भ मे ग्रहण किया गया था। इसके भी कारण हो सकते हैं। वास्तव मे ये दो ही ईश्वर या देव रूप है, शेष तीन तो अभी साधक ही है—लक्ष्य के राही है। ये तीन गुरु है, अभी देव नही। अत. उभर कर यह दृष्टि सामने आती है कि द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से भी इस क्रम को स्वीकार किया जा सकता है क्या ? वाणी रूप मे ढलने पर भी तब यही क्रम आएगा ही। तर्क बडा वहग और दूरगामी होता है। वह रुकना जानता ही नही, पर विश्वास उसे थपथपाता है और स्थिरता देता है।

अन्ततः इतना ही समझना पर्याप्त होगा कि मन्त्र तो द्रव्यार्थिक नय या अर्थतत्व के आधार पर पूर्ण रूप से अनादि है, हां निर्माण काल मे सभव है पद रचना मे कुछ अन्तराल रहा हो। परन्तु हमारे समक्ष तो मन्त्र अपनी पूर्ण अवस्था मे ही अनादि रूप मे मान्य है। हमे उसकी निर्माण अवस्थाओ के तारतम्य के चक्कर में पड कर अपनी सम्यक् दृष्टि को दूषित नही करना है। प्राचीन ऋषियो-मुनियो ने और अति-प्राचीन तीर्थंकरो ने भी हो सकता है इस मन्त्र की अर्थ और वाणी की पूर्णता समय-समय पर की हो। अत उन्ही के द्वारा समग्र रूप में दिया गया मन्त्र ही स्वीकार करना चाहिए। फिर यह भी संभव है कि आरंभ मे जो अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठी मात्र का उल्लेख मिलता है, हो सकता उसमें व्यक्ति-विशेष ने उन दो परमेष्ठियो में ही श्रद्धा प्रकट करनी चाही हो, शेष तीन के रहने पर भी उन्हे शामिल न किया हो। अत बात वही पूर्णता और अनन्तता पर पहुचती है।

प्रसिद्ध ग्रन्थ मोक्षमार्ग प्रकाशक के रचयिता प० टोडरमल जी पच नमस्कार मन्त्र की ऐतिहासिकता का सकेत करते हुए लिखते है कि—"अकारादि अक्षर है वे अनादि विधन हैं, किसी के किये हुए नही है। इनका आकार लिखना तो अपनी इच्छा के अनुसार अनेक प्रकार का है, परन्तु जो अक्षर बोलने मे आते है वे तो सर्वत्र सदा ऐसे ही प्रवर्तने है। इसीलिए कहा है कि—"सिद्धोवर्णसामाम्नाय"—इसका अर्थ यह है कि जो अक्षरो का सम्प्रदाय है सो स्वय सिद्ध है, तथा उन अक्षरो से उत्पन्न सत्यार्थ के प्रकाशक पद उनके समूह का नाम श्रुत है सो भी अनादि निधन है [5]"

सन्दर्भ :

1 'एसो पच णमोक्कारो'—युवाचार्य महाप्रज्ञ—प्रस्तुति
2 तीर्थंकर—पृ 77, णमोकार मत्र विशेषाक—ले० अगरचन्द नाहटा—दिस० 1980
3 महावीर वाणी—पृ० 33—ले० भगवान रजनीश।
4 "जैन धर्म का मौलिक इतिहास" (प्रथम भाग)—पृ० 5-6 लेखक—आचार्य श्री हस्तिमल जी महाराज।
5. मोक्षमार्ग प्रकाशक—पृ० 10—लेखक. प० टोडरमल।

मन्त्र और मातृकाएं

मन्त्र शब्द के विविध अर्थों से यह बात सहज हो जाती है कि मन्त्र किसी भी धर्म का बीजकोश है। आदेश ग्रहण करना अर्थात् दृढ विश्वास के साथ धार्मिक विधि निषेधो को स्वीकार करना—यह मन्त्र शब्द की प्रथम व्युत्पत्ति वाला अर्थ है। इसी भाव को हम जैन शब्दावली मे सम्यग्दर्शन कहते है। छदमस्थ अवस्था को नष्ट कर मानव जब सम्यग्दृष्टि बन जाता है तभी धर्म से उसका भीतरी साक्षात्कार प्रारम्भ होता है। मन्त्र शब्द का द्वितीय अर्थ है विचार करना अर्थात समार और आत्मा के सम्बन्धो पर निश्चयनय की दृष्टि से विचार करना। सभी धर्मो मे विश्वास के साथ ज्ञान की महत्ता स्वीकार की गयी है। सम्यज्ञान की महिमा जैन मात्र को सुविदित है। अत मन्त्र शब्द निश्चायक-असन्दिग्धज्ञान का भी दाता है। मन्त्र शब्द का तीसरा अर्थ मानव के आचरण पर बल देता है। तदनुसार हमे स्वीकृत एव ज्ञात धार्मिक व्रतों, सिद्धान्तो एव नियमो को सम्यक आचरण मे ढालना चाहिए कुल मिलाकर देखे तो सभी धर्मो मे विश्वास, ज्ञान एव आचरण की इसी विशुद्ध त्रिवेणी को धर्म का मूलाधार माना गया है। सभी जैन शाखा-प्रशाखाओ द्वारा मान्य तत्वार्थ सूत्र—सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग—भी सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य को साक्षात् मोक्षमार्ग के रूप मे प्रतिपादित करता है। इन्हे तीन रत्नत्रय भी कहा गया है। अतः सुस्पष्ट एवं स्वय सिद्ध है कि मन्त्र शब्द वास्तव मे धर्म का पर्याय ही है। मन्त्र मे सूत्र रूप मे समस्त जिनवाणी गर्भित है। मन्त्र शब्द के अर्थ की विशेषता यह है कि पारलौकिक-आध्यात्मिक तथ्यो एव फलो के साथ लौकिक जीवन की समस्याओ का भी इसमे समाधान निहित है। मन्त्रशब्द का उक्त तीन क्रिया-परक अर्थों के अतिरिक्त सज्ञापरक अर्थ भी अत्यन्त महत्वपूर्ण एव धर्ममय है। मन्+त्र अर्थात् चित्त को त्राण दायिनी, मुक्तिदायिनी—विशुद्ध अवस्था। चित्त, चिद् और चिति

रूप में मन की तीन अवस्थाए मानी गयी है। चित्त मन की सुप्त एवं अशान्त अवस्था है। चिद् मन की चैतन्यमय जागृत अवस्था है और चिनि मन की एक अवस्था है। जब वह साक्षात् ब्रह्म रूप होकर सर्वव्यापी एवं पूर्ण स्वतन्त्र हो जाता है। इसे ही जीवित-भक्ति के रूप मे भारतीय धर्मों ने स्वीकार किया है। मन्त्र शब्द के इस अर्थ से भी धर्म से इसका अभेदत्व ही सिद्ध होता है। "यद्यपि इस मन्त्र का यथार्थ लक्ष्य निर्वाण-प्राप्ति है, तो भी लौकिक दृष्टि से यह समस्त कामनाओं को पूर्ण करता है।*" ...इद अर्थमन्त्र परमार्थतीय परम्परा गुरु परम्परा प्रसिद्ध विशुद्धोपदेशम्।" अर्थात् अभीष्ट सिद्धिकारक यह मन्त्र तीर्थकरो की परम्परा तथा गुरु परम्परा मे अनादिकाल मे चला आ रहा है। आत्मा के समान यह अनादि और अविनश्वर है।

मन्त्र और मातृकाएं :

भारतीय तान्त्रिक परम्परा के ग्रन्थों मे निःश्रेयस (मोक्ष) प्राप्ति एवं ऐहिक कामनाओं की पूर्ति के साधन के रूप मे मन्त्रो को स्वीकार किया गया है। उपकारक कर्मों के अनुष्ठान को तन्त्र कहा गया है। कर्म सहति ही तन्त्र है। वास्तव मे तन्त्र और आगम को पर्याय के रूप मे भी स्वीकृति प्राप्त है। मन्त्रों की महनीयता का रहस्य तन्त्रो मे निहित है। सामान्य जन मन्त्रो की इस गहराई और विस्तार को न समझ पाने के कारण उनमें अविश्वास करने लगते है। मन्त्रो की रचना में अक्षर, वर्ण एव वर्णमाला का अनिवार्य योग है। वास्तव मे वर्ण और वर्णमाला एकाकी और सगठित रूप मे साक्षात् मन्त्र ही है। यही कारण है कि वर्णों को मन्त्रो की मातृका-शक्ति कहा गया है।

"अकारादि क्षकरान्ता वर्णः प्रोक्तास्तु मातृकाः।
सृष्टिन्यास स्थितिन्यास संहृतिन्यासतस्त्रिधा ।।"

—जयसेन प्रतिष्ठा पाठ श्लोक 376

अर्थात् आकार से लेकर क्षकार पर्यन्त वर्ण मातृका वर्ण कहलाते है। इन वर्णो का क्रम तीन प्रकार का है—सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम और सहारक्रम। णमोकार मन्त्र मे यह क्रम है—यथास्थान इसका विवेचन

* "मगलमन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन" डॉ० नेमीचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य, पृ० 17, पृ० 58।

होगा। मातृका-शक्ति का विवेचन 'पराविंशका' मे भी किया गया है—

"अकारादि क्षकरान्ता मातृका वर्णरूपिणी।
चतुर्दश स्वरोपेता बिन्दुत्रय विभूषिता॥"

वर्णात्मक मातृकाओं की सख्या पचास है। वर्णमाला को स्थूल मातृका के रूप मे मान्यता प्राप्त है। वर्णमयी मातृका-शक्ति है और अर्थमयी मातृका शुभात्मक क्रिया है। शास्त्रो मे इस वर्णमयी मातृका-शक्ति को उच्चारण और अर्थछवियो के आधार पर चार प्रकार मे वर्गीकृत किया है—

1 वैखरी	—	स्थूल मातृका
2 मध्यमा वाणी	—	सूक्ष्म मातृका
3 पश्यन्ती	—	सूक्ष्मतर मातृका
4 परा	—	सूक्ष्मतम मातृका

वैखरी—विशेष रूप से स्वर अर्थात् कठिन होने के कारण इस वाणी विद्या को वैखरी कहा गया है। अथवा ख (कर्ण विवर) से सम्पृक्त होने के कारण भी इसे वैखरी कहा जाता रहा है। विखर एक प्राणाश है, उससे प्रेरित होने के कारण भी इस वाणी को वैखरी कहा जाता है। **मध्यमा**—इस वाणी विधा मे वैखरी की अपेक्षा भावात्मकता और सूक्ष्मता अधिक रहती है। **पश्यन्ती**—इसमे अपेक्षाकृत रूप मे अर्धप्रणवता और व्यजकता की मात्रा सूक्ष्मतर होती है। इसे सामान्य व्यक्ति नही समझ सकता। **परा**—यह वाणी का सूक्ष्मतम रूप है। इसमे मातृका शक्ति का अर्थविस्तार एव भावविस्तार चरम पर होता है। वर्णो की मातृका शक्ति धीरे-धीरे बढते-बढते बिन्दुनात्मक हो जाती है। यह वह अवस्था है जहा पहुचकर वाणी शब्द और वर्ण से हटकर केवल शून्य नादात्मक हो जाती है। इसी अवस्था में जीव का (मानव का) अपनी विशुद्धात्मा से अन्तरात्मा से साक्षात्कार होता है। इसी को वेदान्त मे नाद ब्रह्म की सज्ञा दी गयी है।

उक्त विवेचन का मथितार्थ यह है कि मातृका-शक्ति की पूर्णता स्थूलता अथवा रूपात्मकता से भावात्मकता मे परिणत होने मे है। वाणी की यह अवस्था अनिर्वचनीय होती है। वास्तव मे साहित्य की शब्दावली मे इसे वाणी की या मातृका-शक्ति रस-दशा कहा जा सकता है। उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि इन्ही स्वर, व्यजन एव बिन्दु, विसर्ग तथा मात्राओ वाली मातृका-शक्ति ही ज्ञान एव भाषा लिपियों का मूलाधार है।

हमारी प्राण वायु और ऊर्जा दोनों मिलकर कण्ठ के साथ जुड़ती हैं और कुछ ध्वनियां निर्मित होती हैं। मूर्धा और ओष्ठ के संयोग से कुछ ध्वनियां बनती हैं। इन्ही ध्वनियों को मातृका कहते हैं। मातृका का अर्थ है मूल और सारे ज्ञान-विज्ञान का मूल है शब्द, और शब्द का मूल कण्ठ से ओष्ठ तक है। हमारी प्राण ऊर्जा टकरा करके, आहत या प्रताड़ित होकर अनेक शब्दाकृतियों को पैदा करती है, स्फोट पैदा करती है उसको व्यवहार मे शब्द कहते हैं। ध्वनि शब्द के रूप मे परिवर्तित होती है। यह अपनी उच्चतम अवस्था मे दिव्यध्वनि या निरक्षरीध्वनि भी बनती है। वास्तव मे यह बनती नही है खिरती है—अपनी पूरी गरिमामय सहजता से। यही सम्पूर्ण विश्व के सृष्टिक्रम का सचालन करती है। इसी को हम मात्रिका या मूल शक्ति कहते हैं। सारा ज्ञान-विज्ञान इसी से है। आप किसी नये शहर मे पहुचते ही उसकी जानकारी के लिए तुरन्त उस शहर की पुस्तक खरीद लेते है और अपना पूरा काम चला लेते है। यह क्या है? यही तो है मातृका-शक्ति का प्रकट फल।

हमारी देव नागरी लिपि की वर्णमाला अ से ह तक है। क्ष, त्र, ज्ञ तो सयुक्त अक्षर हैं, स्वतन्त्र नही है। अत. अ से ह तक की वर्णमाला मे ही गर्भित है। हमारी यात्रा अ से आरम्भ होकर ह पर समाप्त होती है। अ से ह तक ही हमारा समस्त ज्ञान-विज्ञान है। हम उसी मे स्वप्न देखते है, सोचते है और जीवन क्रिया मे लीन होते हैं। हमारे समस्त आचार-विचार का मूलाधार यही है। यह जो ससार है वैखरी का ससार है।—बाह्य शब्द का ससार है। इसी के सहारे हम समस्त विश्व को जानते है। मन्त्र मे केवल इतना ही नही है कि शब्द का बाह्य अर्थात् स्थूल ज्ञान मात्र हो। हमने मातृका की बात की है। उसको समझना होगा, उसके व्यापक प्रभाव को हृदयगम करना होगा। मातृका-शक्ति के पूर्ण प्रभाव को हर व्यक्ति नही समझ सकता। इस सन्दर्भ मे स्पष्टता के लिए महाभारत का एक प्रसग याद आ रहा है—भीष्म पितामह बाणो की शय्या पर लेटे हुए हैं। मृत्यु को रोके हुए है। समस्त पाण्डवदल नतमस्तिक होकर पितामह के चारों तरफ खडा है। पितामह ने कहा मुझे प्यास लगी है। सूर्यास्त हो रहा है। पानी लेकर तुरन्त सभी लोग दौडे। पितामह ने नहीं पिया और उदास हो गए। फिर बोले, मुझे मेरी इच्छा का पानी अर्जुन ही पिला सकता है। ये

शब्द सुनते ही—अर्जुन का अर्थ चैतन्य प्रबुद्ध हुआ—अर्जुन ने तुरन्त बाण से पृथ्वी छेद डाली और पानी की धारा धरा पर आ गयी। पितामह ने तृप्त होकर पानी पिया और प्राण त्याग दिये। इस बात को अर्जुन ही समझ सका।

इन वर्णात्मक मातृकाओ मे लौकिक एव पारलौकिक अनन्त फल देने की अपार शक्ति है। जब ये मातृकाए मन्त्रों से परिणत हो जाती है तो वह शक्ति अणुबम की भाति इनमे सगठित हो जाती है यह शक्ति होते हुए भी अज्ञानी और कुपात्र को लाभ नही पहुचाती है क्योकि उसको इसके बोध एव विधि से परिचय ही नही होता है। उदाहरणार्थ एक जगली व्यक्ति को यदि लाखो रुपयो की कीमत का हीरा प्राप्त भी हो जाए तो वह तो उसे एक काच का टुकड़ा ही समझेगा। हमारे धार्मिक भाई-बहिनों मे भी विश्वास और बोध की कमी होने के कारण उन्हे मातृकामय मन्त्रा का लाभ नही होता। मातृका-शक्ति (अर्थात् वर्णात्मक) के विषय मे यह कथन ध्यातव्य है—

मन्त्राणा मातृभूता च मातृका परमेश्वरी।" —यज्ञ वैभव, अध्याय 4

"ज्ञानस्यैव द्विरूपस्य परापर विमर्दमः।

स्यादधिष्ठानमाधार. शक्ति रेकैव मातृका।" —शिवसूत्रवार्तिक-23

मातृका वर्ण कर्म :

1	अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ऋ. ॠ, लृ, लॄ, ए, ऐ, ओ, औ, अ, अ	(16)
2	क, ख, ग, घ, ङ	(5)
3	च, छ, ज, झ, ञ	(5)
4	ट, ठ, ड, ढ, ण	(5)
5	त, थ, द, ध, न	(5)
6	प, फ, ब, भ, म	(5)
7	य, र, ल, व	(4)
8	श, ष, स, ह, क्ष	(5)
		50

समस्त मातृतकाओं की शक्ति, रग, देवता, तत्त्व तथा राशि आदि पर अनेक प्राचीन जैन एव इतर ग्रन्थो मे गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है। केवल इन पर ही एक विशाल ग्रन्थ लिखा जा सकता है। व्याकरण और बीजकोशो मे इनका समग्र विवेचन है ही। यहा पाठकों की जानकारी के लिए मातृका-सार-चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है—

मातृका	वर्ण	आकार	महिमा	राशि	ग्रह	तत्त्व	विशेष
अ	स्वर्ण वर्ण	विशाल पचकोणात्मक	प्रणव बीत का जनक	मेष	सूर्य	वायु	
आ	श्वेत वर्ण	साठ योजन	कीर्तिदायक	"	"	"	
इ	पीत वर्ण	कुण्डली	सदाशक्तिमय	"	"	अग्नि	
ई	"	"	ज्ञानमय	"	"	"	
उ	पीत चम्पक	"	चतुर्वर्गप्रद	वृष	"	भूमि	
ऊ	श्वेत	परम कुण्डली	चतुर्वर्गप्रद	वृष	सूर्य	"	
ऋ	लाल	कुण्डली	सिद्धिदायक	"	"	जल	
ॠ	पीत	परम कुण्डली	पचप्राणमय	मिथुन	"	"	
ऌ	"	कुण्डली	गुणत्रयात्मक	"	"	आकाश	
ॡ	"	परम कुण्डली	"	"	"	"	आत्मसिद्धि में कारण
ए	श्वेत	"	अरिष्ठनिवारक	कर्क	"	वायु	
ऐ	चन्द्रवर्ण	"	शुभकर	"	"	अग्नि	शासन देवो के आह्वान में सहायक
ओ	लाल	"	कार्यसाधक	सिह	"	भूमि	निर्जरा हेतु
औ	"	कुण्डली	बीजों का मूल	"	"	जल	चतुर्वर्गप्रद
अं	पीत	बिन्दुवत	मृदु शक्ति का उद्‌घाटक	कन्या	"	आकाश	ध्यान मन्त्रों में प्रमुख
अः	लाल	चक्राकार	शांति बीजो मे प्रमुख	"	"	"	

मातृका	वर्ण	आकार	महिमा	राशि	ग्रह	तत्त्व	विशेष
क	सुर्ख लाल	कलिकावत	इच्छापूर्ति	तुला	मगल	वायु	
ख	श्वेत	कुण्डलीवत	कल्पवृक्ष	"	"	अग्नि	उच्चारन बीजो का जनक
ग	लाल	कुण्डली रूप	गुणवर्धक	"	"	भूमि	
घ	"	चतुष्कोणात्मक	सर्वप्रद	"	"	जल	मारण और मोहन बीजो का जनक
ङ	"	परम कुण्डली	शत्रुनाशक	"	"	आकाश	
च	"	कुण्डली	फलदायक	वृश्चिक	शुक्र	वायु	उच्चाटन बीज का जनक
छ	पीत	परम कुण्डली	शान्तिप्रद	"	"	अग्नि	
ज	श्वेत	मध्यकुण्डली	नवसिद्धि	"	"	भूमि	आधिव्याधि शमक
झ	लाल	कुण्डली	कार्यसाधक	"	"	जल	श्रीबीजो का जनक
ञ	"	परम कुण्डली	स्म्तभक	"	"	आकाश	मोहक बीजो का जनक
ट	लाल	कुण्डली	शत्रु शमन	धनु	बुध	वायु	विध्वसक कार्यो का साधक
ठ	पीत	"	अशुभ बीजो का जनक	"	"	अग्नि	शुभ कार्यों का नाशक
ड	"	"	विशिष्ट कार्य साधक	"	"	भूमि	अचेतन क्रिया साधक
ढ	लाल	परम कुण्डली	शान्ति विरोधी	"	"	जल	मारण प्रधान
ण	पीत	"	सुखदायक	"	"	आकाश	

मातृका	वर्ण	आकार	महिमा	राशि	ग्रह	तत्त्व	विशेष
त	’	परम कुण्डली	सर्वसिद्धिदायक	मकर	बृहस्पति	वायु	सारस्वत सिद्धिदाता
थ	लाल	कुण्डली	मगल साधक	”	”	अग्नि	स्वर संयोग मे मोहक
द	”	परम कुण्डली	चतुर्वर्गप्रद फलप्रद	”	”	भूमि	आत्मशक्ति का प्रस्फोटक
ध	पीत	कुण्डली	मित्रवत् फल	”	”	जल	
न	लाल	प्रलम्ब	आत्मनियन्ता	”	”	आकाश	जलतत्त्व का स्रष्टा
प	शुभ्र	परम कुण्डली	सर्वकार्य साधक	कुम्भ	शनि	वायु	जलतत्त्वमय
फ	लाल	प्रलम्ब	कार्यसाधक	”	”	अग्नि	फट् ध्वनि के योग से उच्चाटक
ब	शुभ्र	कुण्डली	फलप्रद	”	”	भूमि	अनुस्वार मुक्त होने पर विघ्न विनाशक
भ	श्याम	”	विघ्नोत्पादक	”	”	जल	
म	लाल	परम कुण्डली	सिद्धिदायक	”	”	आकाश	सन्तान प्राप्ति मे सहायक
य	श्याम	चतुष्कोण	शान्तिदायक	मीन	सोम	वायु	अभीष्ट सिद्धि का कारण
र	लाल	द्विकुण्डली	शक्ति केन्द्र	”	”	अग्नि	गतिवर्धक
ल	पीत	”	लक्ष्मी प्राप्ति	”	”	भूमि	
व	”	कुण्डली	रोगहर्ता	”	”	जल	बाधानाशक

मातृका	वर्ण	आकार	महिमा	राशि	ग्रह	तत्त्व	विशेष
श	पीत	कुण्डली	शान्तिदाता	कन्या	सोम	जल	
ष	लाल	,,	सिद्धिदायक	,,	,,	वायु	
स	श्वेत	कुण्डलीत्रय	हितकर	,,	,,	जल	कर्मनाशक
ह	लाल	कुण्डली	कान्तिदाता	,,	,,	आकाश	
क्ष	,,	,,	प्रचप्राणात्मक	,,	,,	अग्नि	

नोट—उल्लिखित मातृका-सार-नालिका प्रपचसार, शारदातन्त्र, सौभाग्य भास्कर, जयसेन प्रतिष्ठा पाठ, मगल मन्त्र णमोकार एव मन्त्र और मातृकाओ का रहस्य नामक ग्रन्थो की सहायता से तैयार की गई है।

मन्त्र और मातृका शक्ति :

मन्त्र के सन्दर्भ में जब हम मातृका विद्या को समझना चाहते हैं तो हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि मातृका विद्या में केवल ध्वनियों एव वर्गों का उच्चारण या आकृति ही सम्मिलित नहीं है वल्कि उन ध्वनियों का मन, शरीर और जगत पर पड़ने वाला प्रभाव भी सम्मिलित है। इसे दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि मातृका विद्या के दो आयाम है—ज्ञानात्मक और क्रियात्मक। ज्ञानात्मक पहलू उच्चारण किये जाने वाले वर्णों का एव उन वर्णों से वने हुए शब्दों के अर्थ का सकेत देता है, तो क्रियात्मक पहलू उन शब्दों के उच्चारण से होने वाले प्रभाव को और शक्ति के परिवर्तन को सूचित करता है।

उदाहरण के रूप मे 'राम' और अर्हं' इन शब्दो को लिया जा सकता है। जब हम राम शब्द का उच्चारण करते है तो इस उच्चारण से हमारे सामने भूतकाल मे हुए पुरुषोत्तम राम की मानसिक प्रतिकृति उभर आती है। उनके व्यक्तित्व की झाकी स्पष्ट हो जाती है। परन्तु साथ ही इस उच्चारण मे एक गूढ़ तत्त्व भी है। राम शब्द के उच्चारण मे र्+आ, म्+अ इतने वर्णों का उच्चारण निहित है। 'र' का उच्चारण करते समय हमारी जिह्वा मूर्धा को छूती है। मूर्धा को छुए विना 'र' का उच्चारण नही हो सकता और मूर्धा को परम तत्व का स्थान माना गया है। 'र' के बाद हम 'अ' का उच्चारण करते है। यह कण्ठ ध्वनि है। कठ को जीव का स्थान माना गया है। अत· 'र' के पूर्ण उच्चारण से यह स्पष्ट हो गया कि परमात्मतत्त्व के साथ जीव का संयोग होता है। दोनों का मिलन होता है। इसके बाद 'म' के उच्चारण में ओष्ठ युगल का अनिवार्य सयोग होता है। 'म' के उच्चारण में शक्ति अन्दर से ऊपर की ओर उठती है और आकाश की महातरगो मे सम्मिलित हो जाती है। अब 'राम' शब्द के पूर्ण उच्चारण का अर्थ हुआ कि 'रा' के उच्चारण में जीवात्मा और परमात्मा का सयोग होता है और 'म' के उच्चारण से जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाती है—उसमे उतरने लगती है। स्पष्ट है आत्मा ही परम निर्विकार अवस्था को प्राप्त कर परम+आत्मा=परमात्मा हो जाती है। अपनी ही प्रसुप्त, दमित एवं आच्छादित आत्मा की विदेशी तत्त्वो से मुक्ति धर्म की सबसे बड़ी कसौटी है।

अर्हं शब्द को भी राम शब्द के समान मातृका शक्ति के द्वारा समझा जा सकता है। जब हम अर्हं शब्द का उच्चारण करते है तो इस शब्द से पूज्य अरिहन्त भगवान का बोध होता है। उनकी मूर्ति सामने आने लगती है। अर्हं के उच्चारण से अरिहन्त परमेष्ठी के रूप-बोध के साथ हमारे आन्तरिक जगत् मे भी परिवर्तन होने लगते हैं। अर्हं के उच्चारण में हम अ + र् + ह् + अ + म् का उच्चारण करते है। 'अ' का उच्चारण[1] कण्ठ से होता है, वह जीव का स्थान माना गया है। 'र' का उच्चारण स्थान मूर्धा है और वह परम तत्त्व का स्थान माना गया है। 'ह' का उच्चारण स्थान कण्ठ है, परन्तु जब 'ह' 'र' से जुड़कर उच्चरित होता है तो उसका स्थान मूर्धा हो जाता है। मूर्धा परम तत्त्व का स्थान है। अब अर्हं मे अन्तिम अक्षर बिन्दु है। वह मकार का प्रतीक है।[2] मकार का उच्चारण ओष्ठयुगल के योग से होता है। इसमे दोनो ओष्ठों के मिलन से ध्वनि भीतर ही गूँजने लगती है। शक्ति ऊपर की ओर अर्थात् सहस्रार की ओर उठने लगती है। इस प्रकार पूरे अर्हं शब्द का मातृका और व्याकरण-सम्मत विश्लेषण के आधार पर अर्थ यह हुआ कि इसमे जीव का परमतत्त्व (अरिहन्त) से साक्षात्कार होता है और दूसरी अवस्था मे यह साक्षात्कार एकाकार मे बदलने लगता है—एकरूप होकर सहस्रार के माध्यम से ऊपर उठने लगता है ऊर्ध्व गमन आत्मा के प्रमुख गुणो मे से एक है।

अर्हं शब्द को एक दूसरे प्रकार से भी समझा जा सकता है। सस्कृत मे अह शब्द है। इसका 'अ' सृष्टि के आदि का बोधक है और 'ह' उसके अन्त का। अत 'अह' उस तत्त्व का बोधक है जिससे सृष्टि का आदि ओर अन्त पुन पुन. होता रहता है। जब इस अह मे अर्हं का 'र्' जुड जाता तो इसका रूप ही बदल जाता है। अह अर्हं बन जाता है। जैन धर्म ने साधना के लिए अर्हं शब्द का उपयोग किया है अर्हं मे 'र' अग्नि शक्ति, क्रियाशक्ति और सकल्प शक्ति का बोधक है। जब सकल्प शक्ति के कारण व्यक्ति मे सम्पूर्ण शक्ति जग जाती है तो स्वत. उसके ससार चक्र का अन्त हो जाता है। उस का अह अर्हं बन जाता है।

---

1 "अकुहविसर्जनीयानाम् कण्ठ," अष्टाध्यायी—पाणिनी
2 "उपूपध्मानीयानामोष्ठौ"— " "

यह कहा जा चुका है कि 'अ' से लेकर 'ह' तक में सभी वर्णों का समावेश हो जाता है अतः अह को सभी वर्णों का संक्षिप्त रूप कहा जा सकता है। 'र' सक्रिय शक्ति का बीज है। इस प्रकार अर्हं में मातृकाओं की सभी शक्तियों का समावेश हो जाता है। 'अर्हं' यह शब्द ज्ञान का ध्वनि का—सरस्वती देवी का बीज है—आधार है।

अर्हं के उच्चारण का मुख्य प्रयोजन है सुषुम्ना को स्पंदित करना। इसमें 'अ' चन्द्रशक्ति का बीज है। 'ह' सूर्य शक्ति का और 'र' अग्नि शक्ति का बीज है। ये वर्ण क्रमश इडा सुषुम्ना और पिंगला को प्रभावित करते हैं। इस प्रभाव से कुंडलिनी जागृत होती है और वह ऊर्ध्व गगन के लिए तैयार होती है। इसी प्रकार ह्रीं के उच्चारण से विश्लेषण करने पर उक्त निष्कर्ष प्राप्त होता है।

प्रत्येक मातृका (वर्ण) विशिष्ट तत्त्व, विशिष्ट चक्र, विशिष्ट आकृति, विशिष्ट नाडी और विशिष्ट रंग से सम्बन्धित होने के कारण विशिष्ट शक्ति को उत्पन्न करता है। वह विशिष्ट बल का प्रतिनिधित्व करता है। यह शक्ति मानव के बाह्य जगत् को जिस प्रकार प्रभावित करती है उसी प्रकार अन्तर्जगत को। योग शास्त्र मे प्रत्येक वर्ण का विशिष्ट शक्ति का वर्णन किया गया है। ये बीजाक्षर हैं अत. इनका व्यापक अर्थ एवं मात्रा तो बीजकोश एवं व्याकरण द्वारा ही पूर्णतया समझा जा सकता है। संकेत रूप में यहां प्रस्तुत है—

अ —अव्यय, व्यापक, ज्ञानात्मक, आत्मैत्य द्योतक, शक्ति बीज प्रणव-बीज का जनक।

आ —अव्यय, कामनापूरक, शक्ति बीज का जनक, समृद्धि, कीर्ति-दायक।

इ—गतिदायक, लक्ष्मी प्राप्ति में सहायक, अग्नि बीज, मार्दवयुक्त।

ई—अमृत बीज का आधार, कार्य साधक, ज्ञानवर्द्धक, स्तम्भन, मोहन, जृम्भन में सहायक।

उ—उच्चाटन एवं मोहन का आधार, शक्तिदायक, मारक (प्लुत उच्चारण के साथ)

ऊ—उच्चाटक, मोहात्मक, ध्वंसक

ऋ—ऋद्धिदायक, सिद्धिदायक, शुभ।

ऌ—सत्योत्पादक, वाणी का ध्वंसक, आत्मोपलब्धि का कारण।
ए—गति सूचक, अरिष्ट निवारक, वृद्धिकारक
ऐ—उदात्त, उच्चस्वरित होने के कारण वशीकरण, देव-आह्वान में सहायक।
ओ—अनुदात्त, लक्ष्मी और शोभा का पोषक, कार्य-साधक
औ—मारण और उच्चाटन मे प्रधान, कार्य साधक
अं—शून्य या अभाव का सूचक, आकाश बीजो का जनक, लक्ष्मी-दायक
अः—शान्तिदायक, सहायक, कार्यसाधक
क—शान्ति बीज, प्रभाव एवं सुख उत्पादक, सन्तान प्राप्ति की कामनापूर्ति में सहायक
ख—आकाशबीज, कल्पवृक्ष
ग—पृथक्कारी, प्रणव के साथ सहायक
घ—स्तम्भक बीज, विघ्न नाशक, मारण और मोहन बीजो का जनक
ङ—शत्रु नाशक, विध्वंसक
च—खण्ड शक्ति का सूचक, उच्चाटन बीज का जनक
छ—छाया सूचक, मायाबीज का जनक, शक्ति नाशक, कोमल कार्यों में सहायक
ज—नूतन कार्यो मे सहायक, आधि-व्याधि निरोधक
झ—रेफयुक्त होने पर कार्य साधक, शान्तिदायक, श्रीकारी
ञ—स्तम्भक, मोहक बीजो का जनक, माया बीज का जनक
ट—वन्हि बीज, आग्नेय कार्यो का प्रसारक, विध्वंसक कार्यो का साधक
ठ—अशुभसूचक बीजो का जनक, कठोर कार्यों का साधक, रोदनकर्ता, अशान्तिकारी, वन्हिबीज
ड—शासन देवताओं की शक्ति जगाने वाला, निम्नस्तरीय कार्यों की सिद्धि में सहायक
ढ—निश्चल, मायाबीज का जनक, मरण बीजो मे प्रमुख
ण—शान्तिसूचक, आकाश बीजों मे प्रधान, शक्ति स्फोटक
त—शक्ति का आविष्कारक, सर्वसिद्धिदायक
थ—मंगल साधक, स्वर मातृका योग मे मोहक

द—आत्म शक्ति प्रकाशक, वशीकरण बीजों को उत्पन्न करने वाला
ध—श्री और क्ली बीजों का सहायक, माया बीजो का जनक।
न—आत्मसिद्धि का सूचक, जल तत्त्व का निर्माता, आत्म नियन्त्रक।
प—परमात्मा का सूचक, जलतत्वमय, समग्र सहायक
फ—वायु और जल तत्त्व से युक्त, स्वर और रेफ के योग में विध्वंसक
ब—अनुस्वर युक्त होने पर विघ्न विनाशक, सिद्धिदायक
भ—मारण, उच्चारन मे उपयोगी, निरोधक।
म—सिद्धिदायक, सन्तान प्राप्ति मे सहायक
य—शान्ति साधक, मित्र प्राप्ति मे सहायक, इच्छित प्राप्ति में सहायक।
र—अग्निबीज, कार्य साधक, शक्ति सफोटक
ल—लक्ष्मी प्राप्ति में सहायक, कल्याण सूचक
व—सिद्धिदायक, ह, र, और अनुस्वार के योग मे चमत्कारी।
श—विरक्ति, शान्ति दायक
ष—आह्वान बीजों का जनक, सिद्धिदायक, रुद्रबीज-जनक
स—इच्छापूर्तिकारक, पौष्टिक, आकरण नाशक
ह—शान्तिदायक, साधना मे उपयोगी, समस्त बीज जनक

मातृका-सारचित्र

(तत्व, चक्र, नाड़ी, विशेषता)

पांच तत्व	इड़ा (चन्द्र स्वर) स्वर — विशुद्ध चक्र	पिंगला (सूर्य) व्यंजना — अनाहत	मणिपूरक चक्र	सुषुन्ना (अग्नि) — स्वाधिष्ठान चक्र	मूलाधार चक्र	सुषुन्ना (अग्नि — आज्ञाचक्र	सहस्रार चक्र	विशेष
वायु	अ आ ए	क च ट	त् प्	र	ध् ×	×	×	ग्राहकता
अग्नि	इ ई ऐ	ख छ ठ अ	फ	र	×	क्ष	×	दर्शनगति
पृथ्वी	उ ऊ ओ	ग ज ढ द		ल व ल	×		ल	गध
जल	ॠ ॠ औ	घ झ 0 ढ	ध	म ×	व स			स्वाद, काम
आकाश	ल अ = × अ लृ	ङ 0 ण	न ×	म् ×	श ×	ह	×	श्रवण, वाक्

महामन्त्र णमोकार और ध्वनि विज्ञान

अनुच्चरित विचार और भाव अव्यक्त भाषा के रूप मे तथा उच्चरित भाव और विचार व्यक्त भाषा के रूप में आज भी भाषा वैज्ञानिको द्वारा स्वीकृत है। भाषा की महत्ता और सार्थकता को अत्यन्त दूरदर्शिता से हमारे प्राचीन ऋषियो, मुनियो एव ज्ञानियों ने समझा और अनुभव किया था। उसी के फलस्वरूप शब्द ब्रह्म, स्फोटवाद और शब्द शक्ति का आविष्कार हुआ। दिव्य ध्वनि और ओंकारात्मक निरक्षरी ध्वनि का खिरना (झरना) इसी सन्दर्भ की विस्तृति में समझना कठिन नही होगा। बैखरी, मध्या, पश्यन्ती और परा—भाषा के ये चार रूप उसकी मुखर स्थूलता से सूक्ष्मतम मानसिकता की यात्रा के क्रमिक सोपान हैं।

भाषा मानव की जन्मजात नही, अर्जित सम्पत्ति है। उच्चरित भाषा का अधुनातन विकास मानव के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास का कीर्तिमान है। मानव के मुखद्वार से निःसृत सार्थक, यादृच्छिक एव व्यवस्थित ध्वनि प्रतीकों का वह समुदाय भाषा है जिसके द्वारा समान भाषा-भाषी परस्पर अपने विचारों और भावो का आदान-प्रदान करते हैं। भाषा विज्ञान की इस परिभाषा का ध्यान रखकर और प्राचीन शास्त्रीय मान्यताओं का ध्यान रखकर, हम महामन्त्र णमोकार का ध्वनि-विज्ञान के सन्दर्भ में अध्ययन कर रहे है।

हम प्रथमतः ध्वनि का स्वरूप, ध्वनियन्त्र, ध्वनियो का वर्गीकरण एवं ध्वनि परिवर्तन पर सक्षेप मे विचार करेंगे। और फिर महामन्त्र मे निहित ध्वनि-तरगों, ध्वनि प्रतीको और ध्वनि-मण्डलो का अध्ययन तुलनात्मक अनुसन्धान एवं वैषम्यमूलक अनुसन्धान के धरातल पर करेंगे। हम वर्ण-मातृका शक्तियो का भी इसी सन्दर्भ में अध्ययन करेंगे।

ध्वनि का अर्थ और परिभाषा :

भाषा विचारों और भावों के आदान-प्रदान का साधन है। वाक्य भाषा की सबसे बडी इकाई है, रूप (पद) उससे छोटी एवं ध्वनि उससे भी छोटी।

किसी वस्तु के दूसरी वस्तु से घर्षित होने से जो प्रतिक्रिया हो, जिसे कान से सुना जा सके, सामान्यतया उसे ध्वनि कहा जाता है। उदाहरण के लिए मेढक अथवा मछली के पानी मे उछलने या कूदने से जो आवाज-ध्वनि या साउण्ड होगी उसे ध्वनि कहा जाएगा। यह ध्वनि की सामान्य परिभाषा है और इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। वैज्ञानिक दृष्टि से वायुमण्डलीय दबाव (Atmospheric pressure) मे परिवर्तन या उतार-चढाव (Variation) का नाम ध्वनि है। यह परिवर्तन वायुकणो (Airparticles) के दबाव (Compression) तथा बिखराव (refraction) के कारण होता है।

भाषा या भाषा विज्ञान के प्रसग मे जिस ध्वनि पर विचार किया जाता है, वह तो पर्याप्त सीमित है। इसे भाषा-ध्वनि कहा जाता है। भाषा-ध्वनि भाषा मे प्रयुक्त ध्वनि की वह लघुतम इकाई है जिसका उच्चारण और सुनने की दृष्टि से स्वतन्त्र व्यक्तित्व हो। उच्चारण के समय ध्वनिया अनेक परिवेशो से सम्बद्ध होती है।—अर्थात् उच्चारण की लम्बाई क्या है—उसके अनुपात मे वह ध्वनि आदि, मध्य या अन्त मे कहां तक उच्चरित है।' उसके पूर्वापर स्वर व्यजनो की स्थिति क्या है।' यदि स्वर है तो कौन-सा—अग्र, पश्च, मध्य, विवृत, संवृत, ह्रस्व, दीर्घ, घोष, अघोष आदि। यदि व्यजन है तो स्पर्श, स्पर्श सघर्षी, मूर्धन्य, दन्त्य, वर्त्स्य, ओष्ठ्य, अनुनासिक आदि मे से कौन है।' ध्वनि का निर्माण परिवेश के माध्यम से होता है। परिवेश की अनिवार्यता के कारण स्वाभाविक रूप मे ध्वनि को परिवर्तन को प्रक्रिया से अपनी यात्रा करनी होती है। भाषा के लिखित रूप से ध्वनियों का प्रत्यक्षः कोई सम्बन्ध नही है। लिखित रूप का सम्बन्ध वर्णो से है। वर्ण एव ध्वनि मे अन्तर है।

भाषाओं मे ध्वनियों को वर्णात्मक-प्रतीको में विभाजित करके समझा जाता है। अलग-अलग भाषाओं मे कभी-कभी एक ही ध्वनि के कई प्रतीक होते है—यथा—अग्रेजी में 'क' ध्वनि के लिए (K), (C),(Q)

तथा 'स' ध्वनियों के लिए (S), (C) प्रतीक हैं। इसी प्रकार एक प्रतीक को कई ध्वनियो से भी उच्चरित किया जाता है। अग्रेज़ी मे ही देखिए—(G) जी द्वारा 'ग' और 'ज' ध्वनि उच्चरित होती है। T द्वारा 'ट' एवं 'त' ध्वनि, इसी प्रकार D द्वारा 'ड' एव 'द' ध्वनि उच्चरित होती है। इस समस्या को ध्वनि लिपि द्वारा सुलझाया जाता है। इसमे एक ध्वनि एक निश्चित संकेत द्वारा व्यक्त होती है। उच्चारण, सवहन, एव ग्रहण के आधार पर ध्वनि विज्ञान की तीन शाखाएं हो जाती हैं: 1. औच्चारणिक (Articulatory phonetics) 2 भौतिक (Acoustic Phonetics) 3 श्रोत्रिक (Auditory phonetics)

औच्चारिनक शाखा द्वारा ध्वनियों की क्षमता (शक्ति) और अन्य ध्वनियो से भिन्नता का ज्ञान होता है। उदाहरण के लिए चल, उत्कल. धवल एव शुक्ल शब्दो में प्रारंभिक ध्वनि च, उ, ध, शु एक दूसरी से कितनी भिन्न हैं इसका पता औच्चारणिक ध्वनि विज्ञान यंत्र से लग सकता है। इसी प्रकार उक्त सभी शब्दों की अन्तिम ध्वनि ल होने पर भी अपनी पूर्ववर्ती ध्वनि के कारण किस प्रकार उच्चारणगत भिन्नता या समानता रखती है इसका भी पता उक्त विज्ञान द्वारा लगता है। पच पदीय णमोकार मत्र के प्रत्येक पद के अन्त मे 'ण' ध्वनि, आती है। प्रारभ के चार पदों मे 'आ' के बाद 'ण' ध्वनि आती है। इसका ('आ' ध्वनि का) 'ण' ध्वनि पर उच्चारणगत प्रभाव सूक्ष्म होने के कारण सामान्यतया समझना कठिन है। परन्तु चतुर्थ पद णमो उवज्झायाणं 'के' 'ण' का और णमो लोए सव्व साहूण के 'ण' का ध्वन्यात्मक अन्तर उनकी पूर्ववर्ती ध्वनि आ और ऊ के आधार पर बहुत अधिक हो जाता है। इसे ध्वनियन्त्र के माध्यम से और मातृका शक्ति के माध्यम से भी समझा जा सका है।

उच्चारण अवयव :

मानवीय ध्वनि के उत्पादन, नियमन एवं वितरण मे उच्चारण अर्थात् सम्पूर्ण मुख-विवर का महत्वपूर्ण योगदान है। उच्चारण यन्त्र दो प्रकार का होता है—एक स्थिर और दूसरा चल। कंठ-नलिक, नासिक विवर, नीचे की तालु के विभिन्न भाग, ऊपरी ओष्ठ और दात स्थिर उच्चारण अवयव हैं। स्वर तन्त्री, जिह्वा, नीचे का ओष्ठ आदि चल उच्चारण अवयव हैं। कुछ भाषा वैज्ञानिक स्थिर उच्चारण

अवयवों के उच्चारण-स्थान के रूप मे मानते है, जबकि चल अवयवों को भी उच्चारण-अवयव के रूप में स्वीकार करते है। उचारण प्रक्रिया मे जबडा एव ओष्ठ तो स्पष्टतया देखे जा सकते है, जिह्वा भी कुछ दृष्टव्य होती है। अन्य क्रियाए भीतर होती है, बाहर से नही देखी जा सकती। एक्सरे, टी०वी०, युवी, लेटिगोस्कोप जैसेउपकरणो से ये क्रियाए समझी जा सकती है। सम्पूर्ण रूप मे यह—मुख, नासिका, कंठ, फेफड़े आदि का समुदाय वाणी-मार्ग (Speech-Tract) कहलाता है।

ध्वनियो के उच्चारण वाग्यत्र (Vocal apparatus) से होना है। इसी को उच्चारण-अवयव (Vocal organ) भी कहते है। उच्चारण अवयव निम्नलिखित है—

1 उपालि जिह्वा (कठ, कठ मार्ग) (Pharynx), 2 भोजन नलिका (Gullet), 3 स्वर यन्त्र कठपिटक, ध्वनियन्त्र) (Larynx), 4 स्वर यन्त्र मुख (काकल) (Glottis), 5 स्वरतन्त्री (ध्वनितन्त्री (Vocal Chord), 6 अभिकाकल-स्वर यत्रावरण (Epiglottis) 7. नासिकाविवर (Nagal cavity), 8 मुख विवर(mouth Carity), 9 अलिजिह्व (कौआ, घंटी) (Uvula), 10 कंठ ((Gutter), 11. कोमल तालु (Soft Palate) 12 मूर्धा, (Cerebrum), 13 कठोरतालु (Hard Palate), 14 वर्त्स (Alreala, 15 दात (Teeth), 16 ओष्ठ (Lip)

नोट—जिह्वा को कुछ भागो मे ध्वनि के स्तर पर विभाजित किया गया है.

17. जिह्वा (Tongue), 18 जिह्वामूल (Root of the Tongue), 19 जिह्वानीक (Tip of the Tongue), 20 जिह्वाग्र—जिह्वा फलक (Front of the Tongue), 21. जिह्वा मध्य (Middle of the Tongue), 22 जिह्वापश्च (Back of the Tongue)

कतिपय भाषा वैज्ञानिको ने व्यवहारिकता के दृष्टिकोण से केवल 16 ध्वनि-अगो को ही स्वीकार किया है।

1 स्वर यन्त्र, 2 स्वर तन्त्री, 3. अभिकाल या स्वर यन्त्रावरण, 4 अलिजिह्वा, 5 कोमल तालु, 6 मूर्धा, 7 कठोर तालु, 8 वर्त्स्य, 9 दात, 10. जिह्वा नोक, 11 जिह्वाग्र, 12. जिह्वामध्य, 13 जिह्वा-पश्च, 14. जिह्वामूल, 15. नासिका विवर, 16 ओठ।

प्रमुख उच्चारण अवयव और उनकी क्रियाएं संक्षेप में इस प्रकार हैं।

फेफड़े—फेफडो में श्वास-प्रश्वास की क्रिया निरन्तर होती रहती है। यही श्वास बाहर आने पर ध्वनि का रूप धारण करती है। फेफडो के ऊपर स्थित श्वास नली से होकर ही श्वास बाहर आती है—इस श्वास से ही ध्वनि उत्पन्न होती है।

श्वासनलिका भोजन नलिका और अभिकाकल—हम प्रतिक्षण नाक के द्वारा भीतर की तरफ सांस लेते हैं और उसे फेफड़ो में पहुचाते है। वही श्वास (वायु) फेफडो को स्वच्छ कर फिर बाहर निकल जाती है। यह श्वास नलिका फेफडे का ही एक अग है।

श्वास नलिका के पीछे भोजन नलिका है जो नीचे आमाशय तक जाती है। इन दोनों नलिकाओ को पृथक करने के लिए इन दोनों के बीच मे एक दीवाल है। भोजन नलिका के साथ श्वास नलिका की ओर झुकी हुई एक छोटी-सी जीभ है। जिसे अभिकाकल कहा जाता है। श्वास नलिका को भोजन के सम बन्द करने का इसी का काम है। यह दीवाल भोजन निगलते समय श्वासनली के मुख को बन्द कर देती है और तब भोजन नली खुल जाती है जिससे होकर भोजन सीधा आमाशय मे पहुच जाता है। श्वास नली बन्द न हो तो भोजन उसमे पहुचेगा, उस स्थिति मे मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। स्पष्ट है कि भोजन के समय मौन रखना श्रेयस्कर है क्योंकि बात करने पर श्वास नलिका खुलेगी ही और भोजन उस ओर भी जा सकता है।

स्वर यन्त्र—स्वरतन्त्री—श्वास नलिका के ऊपरी भाग मे अभिकाकल से नीचे ध्वनि उत्पन्न करने वाला प्रधान अवयव ही स्वर यन्त्र कहलाता है। यही ध्वनि यन्त्र भी कहा जाता है। बाहर गले में जा उभरी ग्रन्थि (टेटुआ) दिखती है वह यही है। स्वर यन्त्र मे पतली झिल्ली के बने दो परदे होते है। इन्हे ही स्वरतन्त्री कहते। अग्रेजी मे इसे (Vocal Chord) कहा जाता है।

मुखविवर, नासिका विवर और अलिजिह्वा (कौआ)—स्वर यन्त्र के ऊपर ढक्कन (अभिकाकल) होता है। इसके ऊपर एक खाली स्थान है जिसे हम चौराहा कह सके है। यहा से चार मार्ग (श्वास नलिका,

भोजन नलिका, मुख विवर, नासिका विवर) चारों ओर जाते हैं। नासिका विवर और मुखविवर के मुहाने पर एक छोटा-सा मांस खण्ड है, वही अलि जिह्वा या छोटी जीभ कहलाता है। अलि जिह्वा कोमल तालु का अन्तिम भाग है।

कोमल तालु—मूर्धा के अन्त का अस्थिमय अश जहा कोमल मांस खण्ड प्रारम्भ होता है, कोमल तालु कहलाता है जब मुख विवर से वायु भीतर की ओर ली जाती है तो कोमल तालु ऊपर उठ जाता है। किन्तु जब वायु नासिका विवर से निकलती है तब कोमल तालु नीचे की ओर झुक जाता है। कोमल तालु मुखविवर और नासिका विवर के बीच एक कपाट का काम करता है।

मूर्धा—कठोर तालु और कोमल तालु के बीच का भाग मूर्धा है। यह उच्चारण स्थलन है।

कठोर तालु—वर्त्स्य के अन्तिम भाग से लेकर मूर्धा के आरम्भ तक का भाग कठोर तालु कहलाता है। मूर्धा की भाति यह भी उच्चारण स्थान है, उच्चारण सहायक नही। तालव्य कही जाने वाली ध्वनियो का यही स्थान है।

वर्त्स्य—ऊपर के दातो के मूल से कठोर तालु के आरम्भ तक का भाग वर्त्स्य कहलाता हे। यह उच्चारण स्थान—अवयव है।

दात—दातो की ऊपर की पक्ति के सामने वाले या ठीक मध्य के दात ही ध्वनि उत्पादन मे विशेष सहायता देते है। ये दात नीचे के ओष्ठ एव जिह्वा की नोक मे मिलकर ध्वनियां उत्पन्न करने मे सहायक होते है।

जिह्वा—मुख विवर (ध्वनियन्त्र) मे जिह्वा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। जिह्वा उच्चारण अवयवो मे सबसे प्रमुख है। यही कारण है कि अनेक भाषाओ मे जिह्वा के पर्यायवाची शब्द भाषा के पर्याय बन गये है। द्रष्टव्य है—

संस्कृत—वाक्, वाणी (वागिन्द्रय)
फारसी—जबान
अंग्रेजी—टग, स्पीच (मदर टग)
फ्रेंच—लाग, लगाज

लैटिन—लिंगुआ
ग्रीक—लेइखेन
जर्मन—पूप्राखे
अरबी—लिस्मान
जिह्वा को पांच भागों मे बांटा जा सकता है—
1. मूल, 2. पश्य, 3 मध्य, 4. उग्र, 5 नोक

वर्गीकरण—ध्वनियों का प्रमुख वर्गीकरण स्वर और व्यंजनों के आधार पर किया जाता है। यह वर्गीकरण सामान्यतया सुविदित है और विस्तृत भेद-प्रभेद यहां अपेक्षित भी नही है; फिर इस निबन्ध की सीमा भी है ही।

भौतिक शाखापरक ध्वनि विज्ञान (Acoustic Phonetics)

भौतिक (Physics) मे ध्वनि की इस शाखा को ध्वनि विज्ञान कहते है। इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से यह अध्ययन किया जाता है कि वक्ता-द्वारा उच्चरित ध्वनियों को किन तरगों या लहरों के द्वारा श्रोता' के कान तक लाया जाता है। वक्ता से श्रोता तक की ध्वनि प्रक्रिया इस प्रकार होती है—वक्ता के फेफड़ों से चली हवा ध्वनि-अवयवों की सहायता से आन्दोलित होकर बाहर निकलती है और बाहर की वायु मे एक कम्पन्न-सा पैदा करके लहरें पैदा कर देती है। ये लहरे ही सुनने वाले के कान तक पहुचती है और उसकी श्रवणेन्द्रिय मे, कम्पन पैदा कर देती है। बस सुनने वाला सुन लेता है। सामान्यत इन ध्वनि तरगों की चाल 1100-1200 फीट प्रति सेकण्ड होती है। इस अध्ययन मे विविध ध्वनि-यन्त्रो से सहायता ली जाती है। यन्त्रो के माध्यम से सुर, अनुतान, दीर्घता, अनुन्नरसिकता घोषत्व आदि का वैज्ञानिक अध्ययन होता है। इस शाखा को प्रायोगिक ध्वनि विज्ञान (Experimental Phonetics) अथवा यान्त्रिक ध्वनि विज्ञान (Instrumental Phonetics) भी कहा गया है।

प्रमुख ध्वनि यन्त्र हैं—

1. **मुख मापक** (Mouth majer)—इसे एटकिन्स ने बनाया था। इसकी सहायता से किसी ध्वनि के उच्चारण के समय जीभ की ऊंचाई-निचाई या सिकुड़पन मापा जा सकता है।

2 कृत्रिम तालु (Fals Palete)—यह धातु से बना एक कृत्रिम तालु है। इसे दन्त चिकित्सक ध्वनि परीक्षण के लिए तालु के आकार का बना देते है। इसमे फ्रेंच चाक या पाउडर लगाकर, इसे मुख मे रखकर तालु में जमा लेते है और परीक्षण योग्य ध्वनि को बोलते है। बोलते समय पाउडर पुछ जाता है। तुरन्त बाहर निकालकर फोटो लिया जाता है। इससे कृत्रिम तालु द्वारा ध्वनि के सही उच्चारण स्थान का पता लग जाता है। सर्वप्रथम इसका प्रयोग 1871 मे कीट्स ने किया।

3. **कायमोग्राफ**—कायमोग्राफ के द्वारा उच्चारण के समय नासा रन्ध्र, मुख तथा स्वर तन्त्रियो के कम्पन को मापा जाता है। अघोष-सघोष ध्वनि भेद की स्पष्टता के लिए इस यन्त्र का उपयोग होता है। इससे अनुनासिकता तथा महाप्राणता भी नापी जाती है।

4 **इक राइटर**—इस यन्त्र से उच्चरित ध्वनियो के सादा कागज पर चित्र बनते है।

5 **मिंगोग्राफ**—स्वीडन के एक वैज्ञानिक ने इसका आविष्कार किया। ध्वनि परीक्षण के लिए कायमोग्राफ की तरह यह भी उपयोगी है।

6. **आसिलोग्राफ**—कायमोग्राम की श्रेणी का ही एक यन्त्र है। ध्वनि कम्पन, दीर्घता, ध्वनि लहर की परीक्षण इससे होता है। बोलने पर बनी ध्वनियों के शीशे पर चित्र दिखाते है। यह विद्युत चालित मशीन है।

7 **लाइरिंगोस्कोप**—ध्वनियो के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए यह यन्त्र उपयोगी है। स्वर यन्त्र एव स्वर तन्त्री की ध्वनियो के परीक्षण के लिए यह यन्त्र है।

एक्सरे और टेप रिकार्डर का उपयोग तो ध्वनि-चित्रो के लिए आम हो गया है। टेप के द्वारा उच्चारण स्थल के निर्णय मे सहायता मिलती है।

8 **पैटर्न प्ले बैक**—इसकी सहायता से ध्वनियो को दृश्यमान बनाया जाता है। इसके बाद ध्वनियो का विश्लेषण सहज एवं सरल हो जाता है।

9 **स्पीच स्ट्रेचर**—विदेशी भाषा-ध्वनियों के सही ढग से ग्रहण

करने में इस यन्त्र से सहायता मिलती है। किसी नवीन भाषा के ध्वनिग्रामों को समझने में इस यन्त्र से सहायता होती है।

10 **पिच मीटर**—ध्वनियों का सुर (Pitch) नापने के लिए इस यन्त्र का उपयोग होता है।

11. **इंटन्सिटी मीटर**—इससे ध्वनि की तीव्रता एवं गम्भीरता नापी जाती है।

12 **आटोफोनोस्कोप**—यह यन्त्र स्वर-यन्त्र के अध्ययन के लिए बनाया गया है।

13 **ब्रीदिंग पलास्क**—श्वास-प्रक्रिया के अध्ययन के लिए इसकी रचना हुई है।

14 **स्ट्रोबोलेरिंगोस्को**—इस यन्त्र के द्वारा स्वर-तन्त्री की गति-विधि का अध्ययन किया जाता है।

इलेक्ट्रीकल, वोकलट्रेक, फारमेट, ग्राफिड मशीन, ओवे, आसिलेटर आदि मशीनों द्वारा और भी सूक्ष्मता से ध्वनि के विविध रूपों का अध्ययन हो सकता है।

श्रावणिक ध्वनि-विज्ञान (Auditory Phonetics)

ध्वनि विज्ञान की यह शाखा उच्चरित ध्वनियों की श्रव्यता का बहुमुखी अध्ययन करती है। जब उच्चरित ध्वनियो की तरगे मानव के कर्ण-छिद्रो मे प्रवेश करती है तब श्रवण-तन्त्रियो मे एक कम्पन होता है। इसके बाद ही मानव मस्तिष्क सवाद (Message) या ध्वनि ग्रहण करता है। सवाद-ग्रहण की यह प्रक्रिया बहुत जटिल है। हमारा कान तीन भागो में विभाजित है—'बाह्य-कर्ण' के भीतरी सिरे की झिल्ली से श्रावणी शिरा के तन्तु आरम्भ होते है, ये मस्तिष्क से सम्बद्ध रहते है। ध्वनि की लहरे कान मे पहुचकर कम्पन्न उत्पन्न करती हैं फिर मस्तिष्क से जुडती हैं। इस शाखा का अध्ययन बहुत व्यय-साध्य एव कठोर श्रम तथा योग्यता की अपेक्षा रखता है। विश्व के अति विकसित देश अमेरिका, फ्रास, रूस और इग्लैण्ड इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है।

स्फोटवाद या शब्द ब्रह्मवाद

स्फोट का अर्थ है खुलना और विस्तृत होना। स्फोट को ब्रह्मवादियों ने नाद का शाश्वत, सर्जक एव अविभाज्य रूप माना है। किसी शब्द के

उच्चरित होते ही वक्ता स्वय के या श्रोता के चित्त में यह स्फोट अर्थ के रूप में उद्भासित होता है। व्याकरण (पाणिनि व्याकरण) के प्रसिद्ध भाष्यकार पतञ्जलि ने इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग किया है। व्याकरण मे उनकी स्फोटवाद की व्याख्या प्रसिद्ध है ही। भर्तृहरि ने अपने ग्रन्थ वाक्यपदीय मे दार्शनिक सन्दर्भ मे स्फोट का उल्लेख किया है। इस स्फोटवादी सिद्धान्त के अनुसार शब्दो के द्वारा जो अर्थ प्रकट होना है वह न तो वाणी में होता है और न ही शब्दो मे, वह तो उन वर्णो और शब्दो मे सन्निहित शक्ति के कारण ही अभिव्यक्त होता है। यह शक्ति ही स्फोटक कहलाती है। काव्य-शास्त्र मे वक्रोक्ति, ध्वनि और व्यजना आदि के रूप मे इसी शब्द-शक्ति को स्वीकार किया गया है। ब्रह्मवादियो के अनुसार यह स्फोट-शक्ति शुद्ध माया के प्रथम विवर्तात्मक नाद मे निहित है। नाद ही जगत् का मूल है और यह जगत् अर्थ रूप मे शब्द से निष्पन्न है।

जैन धर्म के अनुसार तीर्थंकर केवल-ज्ञान प्राप्त कर जिस निरक्षरी और ओंकारात्मक वाणी द्वारा उपदेश देते है, वह वाणी ही समस्त अर्थो और विद्याओ से बहुत परे है। इस वाणी को जीव मात्र अपनी-अपनी भाषा मे समझ लेते है। नाद ब्रह्म या केवली की दिव्य-ध्वनि के मूलाधार पर ही समस्त सृष्टि का विस्तार आधृत है। आज आवश्यकता यह है कि हम उस मूल ध्वनि से पर्याप्त भटक गये है और उसकी पहचान खो बैठे है। यह ध्वनि महामन्त्र णमोकार मे है।

णमोकार मन्त्र में वर्ण और ध्वनि

णमोकार मन्त्र समस्त वर्णों का प्रतिनिधि मन्त्र है। स्वर एव व्यजनमय सारी मातृका शक्तिया उसमे हैं। प्रत्येक वर्ण मन्त्र मे एक निश्चित स्थान पर एक निश्चित शक्ति के रूप मे विद्यमान है। उस वर्ण का स्वरूप, उसका रग, उसका तत्त्व, उसकी आकृति और उससे उत्पन्न होने वाले स्पन्दन (ऊर्जात्मक या तेजोलेश्यात्मक) को पूर्णतया समझना होगा। स्पन्दन उच्चारण और मनन ऊर्जा से सम्बद्ध है। शक्ति प्राप्ति के लिए स्पदन को समझना है। स्पन्दन के लिए ध्वनि, सख्या और अर्थ का त्रिक जुडना आवश्यक है। इन तीनों के विकास में वाक्, प्राण और मन का भी क्रम है। वाक्, प्राण और मन इन तीनों

का एक ही मतलब है। वाक् अग्नि से आता है, प्राण सूर्य से आता है और मन चन्द्रमा से। हमे समझना होगा कि ये तीनो हमारे भीतर कैसे पैदा होते हैं। मन से कैसे प्रकट होते है और फिर कैसे बाहर के विश्व में व्याप्त होते है।

मन्त्रों का प्रयोजन यही है कि आप बैखरी के द्वारा शब्द के मूल को पकडने के लिए गहरे उतरते चले जाए। प्रकाश के मूल स्रोत तक बढते जाएं—वहा तक कि जहां से मूल करेण्ट का संचालन हुआ है—जन्म हुआ है। आप अन्त मे परा वाणी तक पहुंच जाए। जब आपका स्पन्दन (तेज, लय) पाराणसी तक पहुच जाएगा, तब सारे जगत् को परिवर्तित करने में आप परम समर्थ हो जाएगे, अर्थात् सारी सासारिकता आपकी दासी हो जाएगी और आपमें एक लोकोत्तर आभामण्डल उदित होगा। मन्त्रोच्चारण मे स्पन्दनो की, लय और ताल की अनुरूपता का बहुत महत्त्व है। लय और ताल ठीक होने पर ज्ञान और भाव दोनो मे वृद्धि होगी। बैखरी जप का प्रभाव निरन्तर शक्ति और सामर्थ्य बढाता है, परन्तु इसका पूरा निर्वाह कठिन है। स्थूल देह के उच्चारणों की अपनी सीमा होती है। मानसिक जाप की महत्ता अद्भुत है। कुण्डलिनी के जागरण मे यही जाप कार्यकर होता है, पर चित्त की स्थिरता तो ऋषि, मुनि भी नही रख पाते। अतः बैखरी (उच्चारण प्रधान) जाप से बढते-बढते मानस जाप तक हमे पहुचने का सकल्प रखना चाहिए। इस कार्य मे जल्दबाजी अच्छी नहीं होती।

ध्वनि पर भाषावैज्ञानिक, भौतिक एव श्रावणिक स्तरो पर विचार किया जा चुका है। ध्वनि के स्फोटवाद और शब्दब्रह्मवादी सिद्धान्त का भी अनुशीलन हो चुका है। ध्वनि के शक्तिरूप और आध्यात्मिकरूप पर भी संक्षेप मे विचार करना वाछनीय है। इससे णमोकार मन्त्र की ध्वन्यात्मक शक्ति को समझने में सुविधा होगी।

ध्वनि इस जगत् का मूल है, ध्वनि के बिना इस जगत् को पहचाना नही जा सकता। जगत् के पंच तत्त्व, समस्त पदार्थ आदि ध्वनि में गर्भित है। प्रत्येक परमाणु में जगत् व्यापी ध्वन्यात्मक विद्युत्कण हैं, बस उनका आकार सिमट गया है। हर कण में, लहर, लम्बाई, चचलता और विक्षोभ है। हम इस सब को अपने कानों से सुनने में

असमर्थ हैं। शब्द जब स्थूल या अपर बनता है तो श्रव्य एवं ग्राह्य हो जाता है। ध्वनि की विषमता इस संसार की अशान्ति का कारण है। जहा ध्वनि की समरसता और एकतानता है वहाँ समता और शान्ति है। संगीत उसी का एक रूप है। ध्वनि तरंग ही विकसित होकर अक्षर का रूप धारण करती है। ध्वनि ही तत्त्वो से जुडकर एक आकृति मे ढलती है। यह आकृति ही अक्षरात्मक, लिपिपरक रूप धारण कर लेती है। आकृति और ध्वनि का सम्बन्ध छाया और धूप जैसा है। आकृति वास्तव मे ध्वनि की छाया है। इन आकृतियों को जो आकाश मे व्याप्त हैं, महात्माओ और ऋषियो ने देखा है। आशय यह है कि ध्वनि से आकृति और आकृति से अक्षर और अक्षर से शब्द तथा शब्द से वाक्य का क्रम रहा है।

ध्वनि जब आकृति मे अवतरित होती है, तब कैसी होती है? आकृति और ध्वनि में अद्भुत साम्य है। जैसा हम बोलते है वैसा ही लिखते हैं, और जैसा लिखते है, वैसा ही बोलते भी है। प्रत्येक पदार्थ आकृति से बधा है। आकृति का अर्थ है एक विशेष प्रकार का, रस, गध, वर्ण एव स्पर्श। ये सभी विशिष्ट आकृतिया किसी देवता से सम्बद्ध है। मन्त्रो के माध्यम से जब हम देव-चिन्तन करते है तो हमारी शक्ति बढती है। मनोबल बढता है और देवताओ से हमारा साक्षात्कार होता है।

ध्वनि उच्चारण से आकृति का बोध होता है और आकृति से अक्षर का बोध होता है। हर अक्षर एक तत्त्व से बंधा है। चतुष्कोण से पृथ्वी तत्त्व का, षट्कोण से वायु तत्त्व का, चन्द्र लेखा मे जल तत्त्व का त्रिकोण से अग्नि तत्त्व का और वर्तुलाकार कोण से आकाश तत्त्व का बोध होता है। हमारे सभी सासारिक कार्य इन तत्त्वो से बधे हुए हैं। इन तत्त्वो की स्थिति या अनुपात बिगडते ही हम अनेक प्रकार की कठिनाइयों मे पड़ जाते है, पृथ्वी तत्त्व की कमी होते ही शरीर मे रोग उत्पन्न होने लगते है। जल तत्त्व के बिगडते ही खून बिगडने लगता है। मन पर भी इसका प्रभाव पडता है। मस्तिष्क के विकृत होने से विचार भी बिगडते है। अग्नि तत्त्व बिगडने या कम होने से शरीर मे उत्ताप होने लगता है। वायु तत्त्व के अस्त-व्यस्त होने से अनेक प्रकार के दर्द पैदा होने लगते हैं। आकाश तत्त्व बिगडता है तो मन विक्षुब्ध होने

लगता है। दृढ इच्छा शक्ति टूट जाती है। इसी तत्त्व की सही साधना से मानव मे अनन्त ज्ञान, वैराग्य और आनन्द का सचार होता है। हमारे शरीर में जो हमारा मूल स्थान है जिसे हम ब्रह्म योनि या कुडलिनी कहते हैं, उसी से ऊर्जा का प्रथम स्पन्दन होता है। यही स्पन्दन ध्वनि मे परिणत होता है।

णमोकार मन्त्र के प्रत्येक पद का प्रारम्भ णमो से हुआ है। णमो पद बोलकर हम अपने अहकार का विसर्जन करते हैं। 'ण' बोलते ही निर्ममत्व या नही का भाव जाग उठता है और 'मो' के उच्चरित होते ही पूरा अहकार टूट जाता है। निरहकारी व्यक्ति ही णमोकार मत्र के पाठ का अधिकारी है। 'ण' सीधा आकाश की ओर लगता है। वह नाभि से उठता है और आकाश की ओर चलता है। 'मो' स्वाधिष्ठान मे चलता है। इसके उच्चरित होते ही हमारे ओष्ठ जुड जाते है। ध्वनि निकलने की बहुत थोडी जगह ओठो के ठीक मध्य से बचता है। 'ओ' अर्धोष्ठ ध्वनि है। स्पष्ट है कि 'णमो' पद का उच्चारण करते ही हमारी सासारिक-बोझिलता समाप्त होती है और हमारे मन मे एक आत्मिक (ऊर्जा) (Energy) का प्रस्फुटन होने लगता है। 'ण' पिगला से सुषुम्ना की ओर यात्रा है और मो के उच्चारण के साथ ही हम सुषुम्ना मे लय हो जाते है।

ध्वनि का दूसरा नाम है नाद। नाद दो प्रकार के होते हैं। मनुष्य के मस्तिष्क के अन्तिम शीर्ष से ऊर्जा प्रवेश करती है। वह सुषुम्ना में होती हुई ब्राह्मणी के द्वारा मूलाधार को प्रभावित करती है—आगे बढती है। मूलाधार से शब्द पैदा होते है। यही ध्वनि जब पिगला से जुडती है तो दूसरी ध्वनिया पैदा होती है। पिगला से जुडने पर या तो ह्रस्व स्वर (अ, इ, उ, ऋ, लृ) या अनहद नाद' के अक्षर।

स्वाधिष्ठान के नीचे जो अणकोष (दो) है उनके नीचे की जड से दो नाडियां जाती है। इनमे से दाहिनी और से निकलने वाली को पिगला और बाई ओर से निकलने वाली को इडा कहते है। इन दोनो का सम्वन्ध मूलाधार से जुडना है। यह होते ही ऊर्जा (Enkrgy) आने लगती है, एक प्रकम्पन होता है, तरग बनती है और सुषुम्ना में उतरती है और ध्वनियां उत्पन्न होने लगती है। कुछ ध्वनिया इडा से सम्बन्धित है और कुछ पिगला से। ध्वनियो का सम्बन्ध तत्त्वो से हो जाता है। तत्त्वों के बाद उन का सम्बन्ध अलग-अलग चक्रो से है। कुछ ध्वनियां

मूलाधार को प्रभावित करती है, कुछ स्वाधिष्ठान को, कुछ मणिपुर को, कुछ अनहत को. कुछ विशुद्ध को, कुछ आज्ञा चक्र को और कुछ सहस्रार को।

अध्यात्म की पद्धति अन्तर्निरीक्षण है तो विज्ञान की पद्धति परीक्षण है। दोनो इस ब्रह्माण्ड के मूल तत्त्व की खोज मे लगी हुई पद्धतियां है।

योग शास्त्र की दृष्टि से आन्तरिक रचना

योग की दृष्टि से शरीर के भीतरी भागों मे सात चक्र है। इनकी सहायता से ध्वनि और आकृति को सरलता से समझा जा सकता है। ये सात चक्र इस प्रकार है: 1 मूलाधार चक्र, 2 स्वाधिष्ठान चक्र, 3 मणिपुर चक्र, 4 अनाहत चक्र, 5 विशुद्ध चक्र, 6 आज्ञा चक्र, 7 सहस्रार चक्र।

1. **मूलाधार चक्र**—हमारे पृष्ठवश का सबसे नीचे का भाग पुच्छास्थि है। उसमे थोडा-सा ऊपर बास की जड के समान एक नाड़ियों का पुज है। इसी को मूलाधार कहते है। यह कुडलिनी शक्ति का आधारभूत स्थान है। अत इसे मूलाधार कहते है। इसमे पृथ्वी तत्व की प्रधानता है।

2. **स्वाधिष्ठान**—मूलाधार से लगभग चार अगुल ऊपर मूत्राशय गर्भाशय के मध्य शुक्रकोश नाम की ग्रंथि है, वह इस चक्र का स्थान माना गया है। इसमे जल तत्त्व की प्रधानता मानी गयी है। कफ एव शुक्र जैसे जलीय विकारो से इसका विशेष सम्बन्ध है।

3 **मणिपुर चक्र**—नाभि प्रदेश इसका स्थान माना गया है। इसमे अग्नि तत्त्व की प्रधानता है। इसे नाभि चक्र भी कहा जाता है।

4. **अनाहत चक्र**—छाती के दोनो फफ्फुसो के मध्यवर्ती रक्ताशय नामक मासपिण्ड के भीतर इसका स्थान माना जाता है। इसमें वायु तत्त्व की प्रधानता मानी गयी है। इसे हृदय चक्र भी कहा जाता है।

5. **विशुद्धि चक्र**—हृदय के ऊपर कण्ठ स्थान मे थाइराइड ग्रन्थि के पास स्वर-यन्त्र में इसका स्थान माना जाता है। इसमे वायु तत्त्व की प्रधानता है।

6. **आज्ञा चक्र**—दोनों भौओं के बीच मे अन्दर की ओर भूरे रग के कणों के समान मांस की दो ग्रन्थिया है। वहां इसका स्थान माना गया

है। ध्यान की स्थिति मे यह स्थान कभी चक्र जैसा तो कभी दीपक की ज्योति जैसा प्रकाशमान दिखाई देता है। इसमें महत तत्त्व का वास माना जाता है। इसे तृतीय नेत्र भी कहते हैं।

7. **सहस्रार चक्र**—बड़े मस्तिष्क के अन्दर महाविवर नाम के महा छिद्र के ऊपर छोटी-सी पोल है। वहीं इसका निवास माना जाता है। इसे ब्रह्मरन्ध्र भी कहते हैं।

इस प्रकार योग शास्त्र की दृष्टि से जो विचार किया गया, उससे भी यही सिद्ध हुआ कि हमारा जीवन हमारे भीतर से ही उत्पन्न की गयी ऊर्जा से चलता है। श्वासोच्छ्वास के माध्यम से उसे अधिक गतिशील बनाते हैं। यही ऊर्जा ध्वनि और शब्दों मे बदलती है। ध्वनि या शब्द उत्पन्न होने की प्रक्रिया मे सबसे पहले ऊर्जा (Energy) सुषुम्ना से होती हुई मूलाधार को स्पर्श करती है, फिर वहा से एक प्रकम्पन का रूप लेती हुई आगे बढती है। स्वाधिष्ठान चक्र से उसको और गति प्राप्त होती है। इसके बाद मणिपुर चक्र से अग्नि तत्व ग्रहण करती है और हृदय चक्र से टकराती है। यहा उसे वायुतत्त्व प्राप्त होता है। वायु तत्त्व के प्राप्त होते ही यह ध्वनि नाद बन जाती है। यह नाद कण्ठ स्थान (विशुद्धि चक्र) मे आकर, आकाश तत्त्व को प्राप्त करता है। आकाश तत्त्व से मिलने के बाद कण्ठ और ओष्ठ के बीच के अवयवों के सहयोग से यह नाद विभिन्न वर्णो एवं शब्दो के रूप में बाहर प्रकट होता है। चूंकि यह नाद कण्ठ आदि अवयवों से टकराता है—आहत होता है इसलिए यह नाद आहत-नाद कहलाता है। जब यह नाद इन स्थानो से टकराये बिना सीधा ही ऊपर सहस्रार चक्र तब तक चला जाता है, तब यह नाद अनाहत नाद कहलाता है। जब कुडलिनी जागृत होती है अर्थात् जब सम्पूर्ण शक्ति सभी प्रकार से जग जाती है, तब शब्द शक्ति भी पूर्ण रूप से जग जाती है। ऐसी जगी हुई शक्ति परम ईश्वर का कार्य करती है, इसलिए उसे शब्द ब्रह्म कहा गया है।

ध्वनि अपनी यात्रा मे कभी इडा से सम्बन्धित होती है तो कभी पिंगला से तो कभी सुषुम्ना से। इडा, पिंगला और सुषुम्ना से सम्बन्धित होने के कारण वर्णों की तीन प्रकार की शक्तिया मानी गयी हैं—चन्द्र-शक्ति, सूर्य शक्ति तथा अग्नि शक्ति। इन्हीं को क्रमश उत्पन्न करने वाली, बनाये रखने वाली और ध्वस करने वाली (Creative power,

Preservative power, Destructive power) कहा जाता है। इन तीन शक्तियों के कारण ही जगत् का क्रम चल रहा है। योग-शास्त्र के अनुसार मनुष्य के शरीर मे इडा नाडी सोमरस को या चन्द्र की ऊर्जा को वहन कर रही है। पिंगला नाडी सूर्य का तेज धारण कर रही है और सुषुम्ना अग्नि की ऊष्मा का सचारण कर रही है। मन्त्रों में तीनों प्रकार के वर्णो का विन्यास होता है अत मन्त्रों मे भी वे शक्तियां रहती हैं। योग शास्त्र के अनुसार व्यंजन वर्ण शिव रूप है, उनमे स्वयं गति नही है। स्वरो से जुडकर ही वे गति प्राप्त करते हैं। अत· व्यजनो को योनि कहा गया है और स्वरो को विस्तारक।

ध्वनि जब आहत नाद के रूप मे मुह से बाहर निकलती है तो शब्द एव वर्ण कहलाती है। वर्ण का एक अर्थ प्रकाश भी होता है। ध्वनि को प्रकाश में बदला जा सकता है। विभिन्न प्रकम्पनों, आवृत्तियो (Frequencies) मे प्रकम्पित होने वाला प्रकाश ही रग है। प्रकाश, रग, और ध्वनि मूलतः एक ही है। एक ही ऊर्जा के दो आयाम हैं। दोनो अविभाज्य है।

ध्वनि

आहत नाद — अनहत नाद (शब्द ब्रह्म)

आहत नाद
|
शब्द-वर्ण-आकृति
|
प्रकाश
|
रग
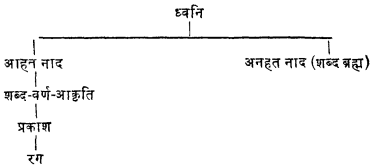
स्पष्ट है कि प्रत्येक आहत ध्वनि आकृति मे बदलती है और आकृति का अर्थ है अभिव्यक्ति। अभिव्यक्ति का अर्थ हैं रग और प्रकाश का होना। अभिव्यक्ति आकार और रग की ही होगी और रग व्यक्त होगा प्रकाश के कारण। ध्वनि, वर्ण और रग और प्रकाश का घनिष्ठ सम्बन्ध मन्त्र के अध्ययन मनन मे गहरी भूमिका निभाता है।

रग का जगत् हमारे मानसिक और आन्तरिक जगत् को बहुत प्रभावित करता है। रूस की एक अन्धी महिला हाथो से रगो को छूकर

और उनसे उत्पन्न होने वाले भावो का अनुभव कर रंगों को पहचानती थी। लाल रग की वस्तु को छूने पर उसे गरमाहट का अनुभव होता था। वह बता देती थी कि वह लाल रग को छू रही है। हरे रंग का स्पर्श करने पर उसे प्रसन्नता का अनुभव होता था और वह हरे रंग को पहचान लेती थी। नीली वस्तु को छूने पर उसे ऊचाई का अनुभव होता था और वह नीले रग को पहचान लेती थी। मन्त्र और इससे उत्पन्न होने वाले रग हमारे आन्तरिक जगत् के ह्रास और विकास में महत्त्वपूर्ण योग देते है।

सामान्य वाणी और मन्त्र वाणी

समस्त वर्ण-माला का और उससे बने शब्दो और वाक्यों का सामान्यतया सभी उपयोग करते है। अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओ मे, प्रेम मे, क्रोध मे, सुख मे, दु ख मे वे ही ध्वनिया उच्चरित होती हैं। परन्तु ऐसे सभी शब्द मन्त्र नही कहे जा सकते। इनसे लोकोत्तर ऊर्जा और प्रभाव को भी पैदा नही किया जा सकता। वे शब्द या शब्द समूह ही मन्त्र है जिनकी शक्ति को पुन:-पुन पवित्र साधना और मनन के द्वारा जगाया गया है। इस शक्ति-जागरण की प्रक्रिया में केवल शब्द की ही शक्ति नही जगती है परन्तु साधक की पवित्र और तन्मय आत्मा की शक्ति भी जगती है। अत मन्त्रित शब्द जोकि मन्त्र बन गये है उनमे पुरातनप्रयोक्ताओ ने अपार शक्ति भी अपनी साधना से सचरित की है। यह हम आज जगाना चाहे तो हमे अपनी पात्रता पर भी एक दृष्टि डालनी होगी। हृदय और मन की पवित्रता, साधना की एकाग्रता और निरहकार तथा नि स्वार्थ आचरण मन्त्र पाठ की पूर्ववर्ती शर्तें हैं।

ह हलो बीजानि चोक्तानि स्वराः शक्तय ईरिताः ॥ 366 ॥

ककार से हकार पर्यन्त के व्यजन बीज रूप हैं और अकारादि स्वर शक्ति रूप है। मन्त्र बीजों की निष्पत्ति बीज और शक्ति के संयोग से होती है। अतः सामान्य वाणी की तुलना मे मन्त्र-वाणी अत्यधिक शक्तिशालिनी एव प्रभावोत्पादक होती है। फिर मन्त्र प्रयत्न करके नही रचे जाते, ये तो अनायास ही सहज वाणी के रूप में किसी परम

पवित्र ऋषि-मुख से या फिर आकाशवाणी के रूप मे प्रकट होते है। मन्त्र तो अनादि अनन्त हैं उसे केवल समय पर लोकवाणी मे अवतरित होना होता है।

णमोकार मन्त्र का ध्वन्यात्मक विश्लेषण एवं निष्कर्ष

णमो — ण—शक्ति : शान्ति सूचक, आकाश बीजो में प्रधान, ध्वसक बीजो का जनक, शान्ति-स्फोटक।

उच्चारण स्थान : मूर्धा—अमृत स्थल।

मो— सिद्धिदायक—पारलौकि सिद्धियों का प्रदाता सन्तान प्राप्ति मे सहायक।
म—ओष्ठ, ओ—अर्धोष्ठ

अरिहंताण— अ— अव्यय (अविनश्वर), व्यापक आत्मा की विशुद्धता का सूचक, शुद्ध—वृद्ध ज्ञान रूप, प्राण-बीज का जनक।
कण्ठ।

तत्त्व वायु, सूर्य-ग्रह, स्वर्ण वर्ण, आकार—विशाल उक्त अविनश्वरता, गुणात्मकता, व्यापकता आदि तत्व सन्निहित अरिहन्त पदवर्ती अकार मे है। विशद्ध पाठ अथवा जाप से उक्त शक्तियो एवं गुणो की प्राप्ति होती है।

रि— शक्ति केन्द्र, कार्य साधक, समस्त प्रधान बीजो का जनक, शक्ति का प्रस्फोटक।
मूर्धा अमृत केन्द्र।
अग्नि।

इ—शक्ति . गत्यर्थक, लक्ष्मी प्राप्ति।

उच्चारण स्थान : तालु।

तत्त्व . अग्नि।

ह— शान्ति, पुष्टि दायक, मंगलीक कार्यों में सहायक, उत्पादक, लक्ष्मी उत्पत्ति में सहायक।
कण्ठ।
आकाश तत्वयुक्त।

ता— आकर्ष बीज, सर्वार्थक सिद्धिदायक शक्ति का आविष्कारक, सारस्वत बीज युक्त।
दन्त।
वायु।

ण— पीतवर्ण, सुखदायक, परम कुण्डली युक्त शक्ति का स्फोटक, ध्वसक बीजों का जनक, शान्ति सूचक।
मूर्धा।
आकाश।

णमो अरिहताणं पद क जो शक्ति, तत्त्व और ध्वनि तरग के आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत किया, गया है उसमे यह सिद्ध होता है कि केवल 'णमो' पद में आकाश बीजो की प्रधानता, शान्ति प्रदायी शक्ति, सिद्धि शक्ति, लौकिक पारलौकिक सिद्धियो की शक्ति तथा सन्तान-प्राप्ति मे सहायक होने का अद्‌भुत गुण है। ध्वनि तरग तो उक्त गुणो को मूर्धा से उच्चरित होने के कारण अमृतमय कर देती है। ण कार तो अमृतमय ध्वनितरग युक्त है ही, साथ ही 'मो' मे ओष्ठ-ध्वनि तरग के कारण 'णकर' ध्वनि का अमृत प्रभाव स्थाई हो जाता है। णमो ध्वनि मे शब्द ब्रह्म की पूर्ण यथार्थता विद्यमान है। शब्द ब्रह्म, अमृत-वर्षी होता है। बस पाठक या जपकर्ता ने स्वच्छ एवं शुद्ध कण्ठ से पूरी मानसिक पवित्रता के साथ 'णमो' का उच्चारण किया हो, यह ध्यातव्य है। पूर्णतया सरल निर्विकार एवं निरहकारी व्यक्ति ही 'णमो' पद के पाठ का सही पात्र है। 'णमो' के उच्चारण मे 'मो' के उच्चारण के साथ ही मूर्धावर्ती अमृत शक्ति से सम्पूर्ण शरीर मे एक तृप्ति, तन्मयता एव निर्विकारता का सचार होता है। भक्त णमो पद के पाठ के साथ

ही अरिहंताण पद के पाठ की पूर्ण पात्रता प्राप्त करता है। अ+रि+हं+ता+ण—पद के सभी मातृका वर्ण क्रमश अविनश्वर—व्यापक—ज्ञानरूप, शक्तिमय—गत्यर्थक, पुष्टिदायक, लक्ष्मी जनक, सिद्धिदायक एव ध्वसक बीजो के स्फोटक है। वायु, आकाश और अग्नि तत्त्वों की गरिमा से युक्त है। ध्वनि तरंग के स्तर पर 'अ' ध्वनि कण्ठ से उद्भूत होकर 'रि' से मूर्धावर्ती अमृततत्त्व प्राप्त कर 'ह' के द्वारा पुन: कण्ठस्थ होता है। और 'ता' द्वारा वायुतत्त्व और दन्त स्थल को घेरती हुई अन्तत 'ण' के उच्चारण के साथ पुन. मूर्धा—अमृत मे प्रवेश कर जाती है। स्पष्ट है कि 'णमो अरिहताण' पर ध्वनि के स्तर पर भक्त या पाठक मे शक्ति, सिद्धि एव अमृत तत्त्व (आत्मा की अमरता) का अनुपम सचार करता है। भक्त अपार श्वेत-आभा मण्डल से परिव्याप्त हो जाता है। उसे अपने इर्द-गिर्द सर्वत्र एक निरभ्र, निर्मल श्वेताभा के दर्शन होने लगते है। वह अपनी आत्मा मे अरिहन्त का साक्षात्कार करने की स्थिति मे आ जाता है। उसका भीतर-बाहर कोई शत्रु नही रह जाता है। वह अजात शत्रु हो जाता है। यह ध्वनि तरग का स्फोटात्मक प्रभाव ही है।

णमो सिद्धाणं :

णमो पद की ध्वनिपरक-व्याख्या की जा चुकी है।

सि— णमो अरिहताण पद के उच्चारण के पश्चात् भक्त या पाठक मे पर्याप्त सामर्थ्य का सचार हो जाता है। जब वह सिद्धाण की 'सि' वर्ण-मातृका उच्चारण करता है तो उसमें इच्छापूर्ति, पौष्टिकता और आवरण नाशक शक्तियो का सचार होता है। यह दन्त्य ध्वनि है। समस्त चक्रो को पार करती हुई यह ध्वनि जब मुख विवर से प्रकट होगी आहत नाद का रूप धारण करती है। तब अद्भुत रक्त आभा मण्डल से भक्त घिर जाता है।

द्धा— 'द्ध' यह सयुक्त मातृका भी दन्त्य ध्वनि तरगमय है। अत. उक्त आहत ध्वनि तरग अतिशय शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न करती है। जल तत्त्व तथा भूमि तत्त्वो की प्रधानता के कारण स्थिरता मे वृद्धि होगी। चतुवर्ग फल प्राप्ति का योग होगा।

णं— णं ध्वनि तो पूर्णतः स्पष्ट है कि वह मूर्धा स्थानीय और अमृतमयी तथा अमृतवर्षिणी है। अतः णमो सिद्धाण के द्वारा कर्मनाश का योग बनता है। इस पद में तीन दन्त्य ध्वनियो की युगपत् तरग निर्मित से जो आहत नाद बनता है वह लोकोत्तर होता है। ज्यो ही वह नाद (सिद्धा) 'णं' ध्वनि का स्पर्श करता है इसमे शब्दब्रह्म की अमृतमयता भर जाती है। भक्त या पाठक केवल 'णमो सिद्धाण' पद का भी जप या सस्वर पाठ कर सकते हैं।

णमो अरिहताण की ध्वनि तरंग से हम में आध्यात्मिक निर्मलता आती है, श्वेताभा से हम भर उठते हैं, कर्मशत्रु वर्ग पर विजयी हो जाते है, अमृत तत्त्व हमारे भीतर प्रवेश करने लगता है। णमो सिद्धाण उक्त प्रक्रिया मे सक्रियता तत्त्व को योजित करता है और शक्तिवर्धन का काम भी करता है।

पूर्व पद की सिद्धि या उपलब्धि अगले पद के कार्य मे योगात्मक होगी ही। णमोसिद्धाण पद पूर्णता को ध्वनित करता है। मानव हृदय और मस्तिष्क स्पष्टता और विश्लेषण अपनी समता मे जानना समझना चाहता है अत. वह अपने सहजीवी आचार्यों, उपाध्यायों और साधुओं की महानता को नमन करता है और अपनी आकाक्षा की पूर्ति करता है। स्पष्ट है कि परवर्ती तीन परमेष्टी पूर्ववर्ती दो परमेष्ठियों की शक्ति और सामर्थ्य के पोपक एव अनुशास्ता हैं। संसारी जीव इनके द्वारा ही प्रकट रूप मे सन्मार्ग ग्रहण करते है।

णमो आइरियाणं :

पंच नमस्कार मन्त्र मे आचार्य परमेष्टी का मध्यवर्ती स्थान है। आचार्य परमेष्ठी मुनि सघ के प्रमुख शास्ता एव चरित्र—आचारण के प्रशास्ता होते है। ये शास्त्रो के ज्ञाता और स्वयं परम संयमी एवं व्रती होते है।

आ— यह वर्ण मातृका पूर्ववर्ती, कीर्तिस्फोटिका एव साठ योजन पर्यन्त आकारवती है। वायु तत्त्व के समान आस्फालित है, सूर्य ग्रहवती है। ध्वनि तरग के स्तर पर कंठस्था है। कठ ध्वनि में उक्त सभी गुण भास्वरित होते हैं।

इ— कुडली सदृश आकार युक्त, पीतवर्णवती, सदा शक्तिमयी, अग्नि तत्त्व युक्त एव सूर्यग्रह धारिणी 'इ' वर्ण मातृका है। ध्वनि तरग के स्तर पर तालुस्थानवती है।

रि— 'रि' मातृका का विश्लेषण 'अरिहताणं' के साथ हो चुका है। इसी प्रकार 'आ' एव 'ण' मातृकाओ का भी विवेचन हो चुका है। यहा ध्यातव्य यह है कि 'रि' एव 'णं' इन मूर्धा-स्थानीय ध्वनियो के कारण अमृत तत्त्व की प्रधानता हो जाती है। अत 'आ' तथा 'इ' कण्ठ्य एव तालव्य ध्वनिया अत्यधिक शक्ति-शालिनी एव गुणधारिणी हो जाती है। आइरियाण पद की आहत ध्वनि स्तर पर एव अनाहत स्तर पर प्रखर महत्ता है। अरिहन्त एव सिद्ध परमेष्ठी तो देव परमेष्ठी है। आचार्य परमेष्ठी गुण और भविष्यत् की संभावना से देव है, परन्तु व्यवहारत वे अभी ससारी ही है। आचार्य परमेष्ठी की प्रमुखता ससार मे रहते हुए व्यवहारिक दृष्टि के साथ सभी को मोक्षमार्ग मे प्रवृत्त करने की रहती है। व्यवहार और प्रयोगमय जीवन पर आचार्य परमेष्ठी का बल रहता है। ध्वनि के आधार पर भी यही तथ्य प्रकट होता है।

णमो उवज्झायाणं :

उ— उच्चाटन बीजो का मूल, अद्भुत शक्तिशाली, पीत चम्पक-वर्णी, चतुर्वर्ग-फलप्रद, भूमि तत्त्व युक्त, सूर्यग्रही। मातृका शक्ति के साथ-साथ उच्चारण के समय श्वास नलिका द्वारा जोर से धक्का देने पर मारक शक्ति का स्फोटक। उच्चारण ध्वनि तरग के आधार पर ओष्ठ ध्वनि युक्त।

व— पीतवर्णी, कुडली आकार वाला, रोगहर्ता, तलतत्त्व युक्त, बाधा नाशक, सिद्धिदायक, अनुस्वाद के सहयोग से लौकिक कामनाओं का पूरक। ध्वनि के स्तर पर तालव्य।

ज्झा— ध्वनि की दृष्टि से दोनों वर्ण चवर्गी हैं अत. तालव्य हैं। लाल-वर्णी है, जल तत्त्व युक्त है, श्री बीजो के जनक हैं। नूतन कार्यों मे सिद्धि, आधि-व्याधि नाशक।

या— श्यामवर्णी, चतुष्कोणात्मक आकृतियुक्त, वायुतत्ववान् तालव्य ध्वनि-तरगयुक्त मित्र प्राप्ति मे सहायक—अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति मे सहयोगी हरित वर्ण।

णं— मातृका की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है।

इस पद की अधिकाश मातृकाए तालव्य है। और अन्ततः मूर्धा-स्थानीय 'ण' ध्वनि तरग से जुडकर उसमे लीन होती है। उपाध्याय परमेष्ठी का वर्ण हरा है जो जीवन मे ज्ञानात्मक हरीतिया और अभीष्ठ वस्तुओ को उपलब्ध करता है। मूर्धा-अमृताशयी ध्वनि तरग को उत्पन्न करके समग्र जीवन का अमृत-कल्प बनाती है। भूमि, जल और वायु तत्त्व ही हरीतिया के मूल आधार है। इन तत्त्वों की इस पद मे प्रमुखता है। ध्वन्यात्मक स्तर पर यह पद अत्यन्त शक्ति-शाली है। मस्तिष्क की सक्रियता, शुद्धता और प्रखरता मे यह पद अनु-पम है।

णमो लोए सब्ब साहूणं :

इस पद का अर्थ है लोक मे विद्यमान समस्त साधुओ को नमस्कार हो। यह परम अपरिग्रही और ससार त्याग के लिए कृतसंकल्प साधुओ का अर्थात् उनमे विद्यमान गुणों का नमन है। साधु पद से ही मुक्ति का द्वार खुलता है अत. इस गुणात्मक पद की वन्दना की गयी है। 'णमो' पद की व्याख्या आरम्भ मे ही हो चुकी है।

लो— ल्+ओ=लो। वर्ण मातृका शक्ति के आधार पर 'ल्' श्री

बीजों में प्रमुख, कल्याणकारी और लक्ष्मी प्राप्ति मे सहायक है। पीतवर्णी, द्वि मुडली युक्त, मीनराशि, सोम ग्रह युक्त तथा भूतत्व युक्त है। इसकी ध्वनि दन्त्य है और ओ के सहयोग से वह दन्त्योष्ठ हो जाती है। ओ मातृका उदात्तता का सूचक है, निर्जरा हेतुक, रमणीय पदार्थों की सयोजिका सिह राशि युक्त, भूमि तत्त्ववती तथा परम कुडली आकार की मातृका है। 'लो' मातृका दन्त्योष्ठ ध्वनि तरगी होने के कारण कर्मठता और सघर्षशीलता को ध्वनित करती है। अन्तत: विजयपर्व की सूचिका है। साधु परमेष्ठी भी कर्ममय कर्मो से सघर्प का जीवन व्यतीत करते है।

ए— श्वेत वर्ण, परम कुडली (आकार), अरिष्ट निवारक, वायुतत्त्व-युक्त, गतिसूचक, निश्चलता द्योतक तालव्य ध्वनि युक्त।

स— शान्तिदाता, शक्ति कार्य साधक, कर्मक्षयकारी, कर्मण्यता का प्रेरक, श्वेतवर्णी, कुडलोत्रय आकारवान, जलतत्त्वयुक्त दन्तस्थानीय।

व्व— कुडलीवत आकार, रोगहर्ता, जल तत्त्वयुक्त, सिद्धिदायक सारस्वत बीजयुक्त, भूत-पिशाच-शाकिनी आदि की बाधा का नाशक, स्तम्भक, तालव्य ध्वनियुक्त। सयुक्त ध्वनि मातृका होने के कारण द्विगुण शक्ति।

सा— 'स' ध्वनि का विवेचन 'णमोसिद्धाण' के प्रसग मे हो चुका है। देखिए।

हू— 'ह' ध्वनि का विवेचन 'णमो अरिहताण' के प्रसग मे हो चुका है। देखिए।

ण— 'ण' ध्वनि पूर्व विवेचित है ही।

महामन्त्र णमोकार अनादि-अनन्त महामन्त्र है। इसकी गरिमा महत्ता और मगलमयता सहस्रो वर्षो से अनेक भक्तो के प्रचुर अनुभव द्वारा प्रमाणित होती आ रही है। इसकी महत्ता को सिद्ध करना कुछ ऐसा ही है जैसे कि अग्नि की उष्णता सिद्ध करना अथवा वायु की

गतिमयता सिद्ध करना। फिर भी आधुनिक सभ्यता की मांग है कि किसी भी बात को तर्क सिद्ध करके ही स्वीकार किया जाए। अतः इस चर्चा में महामन्त्र की अनेक शक्तियों के साथ उसकी ध्वन्यात्मक महत्ता की एक सक्षिप्त किन्तु पूर्ण झलक दी गयी है।

1. ध्वनियों की सम्पूर्ण ऊर्जा इस महामन्त्र में निहित है। वर्णों का सयोजन और गठन का क्रम ध्वनि तरगों के स्फोटक सन्दर्भ मे है।

2. ध्वनि विज्ञान एक सम्पूर्णता और सश्लिष्टता का विज्ञान है। यह सम्पूर्णता और सश्लिष्टता इस महामन्त्र मे अन्त स्यूत है।

3 इस महामन्त्र का ध्वन्यात्मक पूर्ण लाभ लेने के लिए प्राकृत भाषा का अपेक्षित अभ्यास कर लेना आवश्यक है। शुद्ध उच्चारण से ही अपेक्षित आभा मण्डल निर्मित होता है और शुक्ल-ऊर्जा सचारित होती है।

4 णमोकार मन्त्र सदा एक महा समुद्र है। मानव को इसमें गहरे-गहरे उतरने पर नित्य नये अर्थ एव ध्वनि गुण की नवीनता प्राप्त होगी।

5. ध्वनि, रंग, और प्रकाश का घनिष्ठ नाता है। इन तीनों को एक साथ समझना होगा। पच परमेष्ठियो के अपने-अपने प्रतीकात्मक रंग है। रग चिकित्सा (कलर थेरेपी) का महत्त्व आज सुविदित है। रग के प्रयोग, वस्त्रो पर, मकान पर और प्रकाश पर करने से रोग-निवारण की प्रक्रिया है ही।

6 ध्वनि और शब्द ब्रह्मात्मक ध्वनि में अन्तर है। वर्णमातृकाओं के अन्दर गर्भित तत्त्वों के कारण, वर्ण सयोजन के कारण और भक्त की निष्ठा और एकाग्रता के कारण अद्भुत लौकिक और पारलौकिक प्रभाव उत्पन्न होता है।

7 तर्क की अपेक्षा यह मन्त्र अनुभूति के स्तर पर स्वानुभव का विषय अधिक है। मन्त्र तर्कातीत होते हैं।

8. भाषा वैज्ञानिक स्तर पर, भौतिक स्तर पर, श्रावणिक स्तर पर ध्वनि का अध्ययन करने के साथ-साथ योगिक स्तर एवं आध्यात्मिक स्तर पर भी ध्वनि को महामन्त्र के सन्दर्भ में सक्षेप में आस्फालित

किया गया है। शब्दशक्ति और न्याय शास्त्र का भी सन्दर्भ देखा गया है। यह आलोडन यहा साकेतिक ही रहा है। ध्वनि के स्तर पर महामन्त्र की ऊर्जा को ठीक ढग से समझने के लिए एक पूरी पुस्तक भी कम होगी। सामान्य जीवन मे ही शब्द की ध्वनि जब परिचित और व्यवहृत अर्थ से हटकर केवल नादात्मक एवं लयात्मक रूप धारण कर सगीत मे ढलती है अथवा कीर्तन मे ढलती है तब एक अद्भुत लोकोत्तर तन्मयता समस्त जड चेतन मे व्याप्त हो जाती है। यह क्या है? यह केवल ध्वनि शब्द ब्रह्म का सहज रूप है। यह कार्य ध्वनि—लयात्मक सगीत से ही सम्भव है। बहु ध्वनि की एकतानता से समस्त जड़ चेतन मे एकतालता छा जाती है। अपने भौतिक शाब्दिक स्तर से उठता हुआ। संगीत-लयात्मक नाद जब आहत से अनाहत नाद की स्थिति में पहुचता है तब सहज ही आत्मा की निर्विकार सहज अवस्था से साक्षात्कार होता है।

नमस्कार महामन्त्र का अथवा सामान्य मन्त्र का मुख्य प्रयोजन तो मानव को उसके मूल शुद्ध आत्म-स्वरूप की गरिमा की पहचान कराना है, परन्तु कुछ अन्य मन्त्र चमत्कार और सासारिकता मे ही उलझ कर रह जाते है। णमोकार मन्त्र महामन्त्र इसीलिए हैं। क्योकि वह सबका सामान्यत्व अपने साथ रहकर भी इससे बहुत ऊपर आत्मा के ज्योतिष्क लोक से अपना असली नाता रखता है। गुरु मन्त्र कौन देता है जो दिव्य कर्ण से युक्त होता है, गुरु हमे देखते ही हमारे आभामण्डल की गति-विधि को पहचान लेते है। वे समझ लेते हैं कि हमें किस शब्द मन्त्र की आवश्यकता है। वही शब्द गुरु देते है। वह शब्द हमारे शक्ति व्यूह को जगाने वाला होता है। उस शब्द के तन्मयता पूर्वक लगातार किये गये जप से हमारे अन्दर एक ध्वनिमूलक रासायनिक परिवर्तन होता है। मन्त्र ही सूक्ष्म एव अतीन्द्रिय ध्वनिया पैदा कर सकता है। सामान्य शब्द या ध्वनि से वह काम नही हो सकता।

वैज्ञानिको ने प्रयोग करके पता लगाया कि श्रव्य ध्वनि वह शक्ति नही रखती है जो शक्ति मानसिक ध्वनि मे होती है। यदि श्रव्य ध्वनि के उच्चारण से एक प्याला पानी भी गरम करना हो तो लगातार डेढ सौ वर्ष लगेगे। तब जरूरत वाला व्यक्ति भी न रहेगा। इतनी ऊर्जा उच्चरित ध्वनि से डेढ़ सौ वर्षों मे पैदा होती है। लेकिन वही शब्द या

ध्वनि जब मानसिक रूप से उच्चरित होती है तो एक सर्वव्यापि स्फोट पैदा होता है; कर्णातीत तरगे पैदा होती हैं। इन कर्णातीत तरंगों में सबसे अधिक शक्ति है। ध्वनि जब भावना से मिलकर बनती है तो उसमे एक मैग्नेटिक करेण्ट (चुम्बक लहर) उत्पन्न होता है। युद्ध के मैदान में एक कायर भी अपने सेनापति के वीर रस भरे शब्दों को सुन-कर प्राणार्पण के लिए तैयार हो जाता है, प्रेमी के शब्द प्रेमिका को प्रभावित करते हैं। तो यह स्थूल बेखरी वाणी जब इतना प्रभाव डाल सकती है तो परावाणी तो सहज ही लोकोत्तर प्रभाव उत्पन्न कर सकती है। स्थूलता से सूक्ष्मता का महत्त्व अधिक—बहुत अधिक इस-लिए है, क्योकि सूक्ष्मता मे शक्ति का सार, सघनता और प्रभावकता एकीकृत एवं केन्द्रित होती है।

णमोकार मन्त्र और रंग विज्ञान

आज शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य के लिए ध्वनि विज्ञान, रत्न विज्ञान (Gem Therapy) सूर्य-किरण चिकित्सा और रगीन रश्मि चिकित्सा या विज्ञान का वर्चस्व विज्ञान द्वारा भी प्रमाणित किया जा चुका है। भारतीय सन्तों और ऋषियो-योगियो ने तो अपने सहस्रों के अनुभव से इन विज्ञानो और चिकित्साओ को सहस्रो वर्ष पूर्व ही प्रतिपादित कर दिया था। रग विज्ञान या रग चिकित्सा भी इन वैज्ञानिक चिकित्साओ मे अपना विशिष्ट स्थान रखती है, बल्कि यह कहना अधिक समीचीन होगा कि उक्त अन्य चिकित्साओ का मूलाधार रग चिकित्सा है। बाइबिल और कूर्म पुराण के वक्तव्यो से भी यह समर्थित है। इन्द्रधनुप के सात रग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

"The rain bow is transitory in nature, but when it is seen it is always the same, composed of the seven most brilliant colours of the spectrum consisting of the colours—Violet Indigo, Blue, Green, Yellow, Orange and Red

In the Holy Bible it is said (Genesis, IX, 13) about the Rain bow--"I do set my bow in the cloud and it shall be for a token of a covenant between Me and the Earth "

In the same chapter it is father said (IX, 16), "And the bow shall be in the cloud, and I will look upon it that I may remember the everlasting covenant between God and every living creature of all flesh that is upon the earth "

अर्थात् इन्द्र धनुष प्रकृत्या परिवर्तनशील है, परन्तु जब भी वह दिखता है, एक-सा ही दिखता है। सर्वाधिक चमकीले सात रगो से इन्द्रधनुष निर्मित है। ये सात रग है—बेगनी, जामुनी, नीला, हरा, पीला, नारगी और लाल। पवित्र बाइबिल मे इन्द्रधनुप के विषय मे

कहा गया है, "मैं बादलों मे अपना धनुष रखता हूँ और यह मेरे और पृथ्वी के मध्य एक प्रतिज्ञापत्र के रूप मे रहेगा।" इसी अध्याय मे आगे कहा गया है, "यह धनुष बादलों मे रहेगा और मै सदा उस पर दृष्टि रखूगा कि ईश्वर और पृथ्वी के सभी जीवधारी जगत् के बीच यह प्रतिज्ञापत्र अमर रहे और मेरी स्मृति मे रहे। इन सातो रगों को सृष्टि का जनक, रक्षक एव ध्वसक बताया गया है। सात रग, सप्त ग्रह, सात शरीर चक्र, सप्तस्वर, सात रत्न, पाच तत्त्व, पांच इन्द्रियों और सप्त नक्षत्रो का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

महामन्त्र णमोकार की महिमा और गुणवत्ता का अनुसंधान रंग विज्ञान के धरातल पर भी किया जा सकता है। और इससे हमें एक सर्वथा नई समझ और नई दृष्टि प्राप्त हो सकती है। भौतिक शक्तियों पर नियन्त्रण करके उन्हे आध्यात्मिक उन्नति की दिशा में एक साधन के रूप मे स्वीकार करना ही होगा। एक आत्म-निर्भरता की मजिल आ जाने पर साधन स्वय ही छूटते चले जाते हैं।

प्रतीकात्मकता :

णमोकार मन्त्र में प्रतीकात्मक पद्धति अपनायी गयी है। प्रतीक के के बिना कोई मन्त्र महामन्त्र नही कहा जा सकता। इस मन्त्र मे जो अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी रखे गये हैं, वे सभी प्रतीक है। इसमे जो रंग रखे गये हैं, वे भी प्रतीक है। कलर और लाइट मे बहुत फर्क नही है। एक ही चीज है। कलर मे लाइट और साउण्ड सो रहे है। कलर स्त्री वाचक और लाइट पुरुष वाचक है।

ध्वनि दो रूपों मे आकार ग्रहण करती है। ये दो रूप है वर्ण और अंक। वर्ण और अक का सम्बन्ध ग्रहो, नक्षत्रो, तत्त्वो और रगो से होता है। वास्तव मे वर्ण का अर्थ रग ही है। ध्वनि को आकृति मे बदलने के लिए प्रकाश और रग मे बदलना ही पडेगा। वर्णों के रंगो का वर्णन पहले साकेतिक रूप मे किया जा चुका है। अंको के रग प्रकार हैं—

एक का रग—लाल (अग्नि तत्त्व)

दो का रग—केसरिया

तीन का रग—पीला

चार का रंग—हरा
पाच का रग—नीला
छ का रग—बेंगनी
सात का रग—जामुनी
आठ का रग—दूधिया (सफेद)
नौ का रग—दूधिया (चांमिन)

आशय यह है कि अक्षरों या वर्णो का ही रंग नही होता, अंकों का भी रग होता है। रग से अक्षरों और अको की शक्ति और प्रकृति का बोध होता है।

बिन्दु का स्फोट ही ध्वनि है और ध्वनि में जब स्फोट आता है तो शब्द बनता है। ध्वनि स्फोट की अवस्था मे जब किसी अग से बिना टकराहट के चली जाती है और सीधी सहस्रार चक्र मे जुडती है और एक दिव्य प्रकाश का रूप धारण करती है तो उसे अनहत नाद कहा जाता है। जब वह ध्वनि शरीर के अगों से टकराकर गुजरती है तो वह वर्णात्मक, अक्षरात्मक एव शब्दात्मक हो जाती है।

ध्वनि का वर्ण, अक्षर एव शब्द मे ढलने/बदलने का अर्थ है उसमे प्रकाश का आना और प्रकाश रग के द्वारा ही प्रकट होता है। प्रकाश बिना रग के अभिव्यक्त नही हो सकता। साधक अपने सकल्प बल मे ही मन्त्र मे उतरता है। वास्तव मे मन्त्र भी तो किसी के सकल्प की एक शब्दात्मक आकृति है। सकल्पके अनुसार विचारो और भावो मे परिवर्तन आता है। यह परिवर्तन—आकृति परिवर्तन—ही मन्त्र का काम है। आपने अनुभव किया होगा लाल रग के और नीले रग के कमरे मे कितना अन्तर है। लाल रग मन को उत्तेजित करता है, भडकाता है, जबकि नीला रग मन को शान्त करता है, इतना ही नही लाल रग के कारण वही कमरा छोटा दिखने लगता है जबकि नीले रग के कारण वही कमरा बडा दिखता है। रग-परिवर्तन भाव परिवर्तन का प्रमुख कारण है।

ध्वनि तरगो का एक स्थान से दूसरे दूरवर्ती स्थान मे सम्प्रेषण और श्रवण त्वरित श्रवण आज विज्ञान के कारण आम आदमी के सामान्य

जीवन के अनुभव की बात हो गयी है। किन्तु आकृति और दृश्यों का अवतरण एवं सम्प्रेषण भी कैमरा, एक्सरे और टेलीविजन जैसे यन्त्रों से कितना सुगम हो गया है, यह तथ्य भी सभी को ज्ञात है। कम्प्यूटर से तो अब आदमी की मानसिकता का भी सही पता लगने लगा है।

यदि सूर्य के प्रकाश को त्रिपार्श्व (तिकोना शीशा, Prism) से सम्प्रेषित किया जाए तो उसका (प्रकाश) विश्लेषण हो जाता है। ऐसी प्रक्रिया में सूर्य बिल्कुल नये रूप मे प्रकट होता है। इसमे हमें सात रग दिखाई देते है। किसी वस्तु पर यह प्रकाश विकीर्ण करने पर ये सातों रंग स्पष्ट हो जाते है। इस विश्लेषित प्रकाश को हम स्पेक्ट्रम कहते हैं। इस विश्लेषण का प्रकारान्तर यह हुआ कि यदि उक्त सात रगों को (बैंगनी, जामुनी, नीला, हरा, पीला नारगी, लाल) मिश्रित कर दें तो सफेद रग बनेगा।

रंगों अथवा रंगीन किरणों के गुण :

लाल, नीला और पीला ये तीन प्रधान रंग है। अन्य रंग इनके भिन्न-भिन्न आनुपातिक मिश्रणो से बनते हैं। इन रंगो का मुख, समृद्धि और चिकित्सा के क्षेत्र मे बहुत महत्त्व है। लाल प्रकाश या रग धमनी के रक्त (लाल) को उत्तेजित करता है। कुछ नारगी और पीला प्रकाश नाडियों को उत्तेजित करता है। इन नाडियो में यही रंग होता है। नीला रग धमनी के रक्त को शान्त करता है, किन्तु यही शिराओ के रक्त को तेज भी करता है। कभी-कभी विपरीत रगो के प्रयोग से असन्तुलन दूर होता है। सिर मे रक्त और नाडियों की प्रधानता है, सन्तुलन के लिए नीले और बैंगनी रग से लाभ होता है। हाथ-पैरो के दर्द आदि के लिए लाल रग उत्तम है। मासिक धर्म की अधिकता में नीला, पीलिया मे पीला रग उपयोगी है।

लाल रग. लाल रग मे गर्मी होती है। नाडियो को उत्तेजित करना इसकी विशिष्ट प्रवृत्ति है। चोट या मोच मे इसका प्रयोग होता है। यौन दौर्बल्य (Sexual weakness) मे इसका अद्भुत प्रभाव होता है।

नारगी· यह रग भी उष्णता देता है। दर्द को दूर करने में यह सफल है।

पीला . हृदय के लिए लिए शुभ है, यह मानसिक दुर्बलता दूर करने के लिए टानिक है। मानसिक उत्तेजना को भी यह दूर करता है। सुषुम्ना पर प्रयोग करना चाहिए।

हरा नेत्र-दृष्टि वर्धक है। शान्त और शमनकारी है। फोडो या जख्मो को तुरन्त भरता है। व पेचिश मे लाभकारी है।

नीला दर्द शान्त करता है। खुजली शान्त करता है। मानसिक रुग्णता मे भी कार्यकर है।

आसमानी

रग · पाचन क्रिया मे तीव्रता के निमित्त इसका उपयोग होता है। तपेदिक—शमन है।

बैगनी रग दमा, सूचन, अनिद्रा मे उपयोगी है।

रश्मि विज्ञान एव रग विज्ञान से सम्बन्धित कतिपय वैज्ञानिक मशीने या यन्त्र ये है। इनके द्वारा विधिवत् किरणों की परीक्षा की जा सकती है।

1 **रश्मिचक्र** (Chromo disk)—यह कुप्पी के आकार का ताबे का यन्त्र होता है। इसके भीतरी भाग मे निकिल या अल्युमिनियम की की एक परत होती है। इससे प्रकाश सरलता से प्रतिबिम्बित होता है। शरीर मे गरमी भरने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। सूर्य प्रकाश के स्थान पर इसका उपयोग होता है। किसी विशेष रग के प्रकाश के लिए उस रग का शीशा इसकी भीतरी सतह पर रख दिया जाता है।

2 **रश्मि दर्पण** · (Chromo lense)—यह यन्त्र दुहरे वर्तुलाकार शीशे से बनता है। इसमे किरणे पानी में प्रतिबिम्बित की जाती है और फिर वे तिरछी होकर शरीर को छूती है। जल सम्पर्क के कारण ये किरणे अधिक शुद्ध एव शक्तिमती बन जाती हैं।

3 **ताप प्रकाश यन्त्र** (Thermolume)—इस यन्त्र के भीतर लेटकर रोगी आसानी से प्रकाश-स्नान कर सकता है। रोगी के अग विशेष पर ही प्रकाश विकीर्ण किया जाता है। इससे शरीर के रुग्ण स्थलीय कीटाणु नष्ट हो जाते है।

4 विद्युत ताप प्रकाश यन्त्र—बदली के दिनों में और रात के समय प्रकाश स्नान के लिए यह यन्त्र उपयोगी है। सफेद रग के अर्क लैम्प के कारण यह यन्त्र सूर्य जैसा ही प्रकाश देता है। रग आदि की आवश्यकता के अनुसार बल्ब बदल लिये जाते है।

5 पारद वाष्प लेम्प : (Quartz mercury vapour Lamp)—स्पेक्ट्रम के विभिन्न रंगो मे इन्फारेड और अल्ट्रा वायलेट किरणों का अपना विशेष महत्त्व है। इन्हे उक्त यन्त्र की सहायता से ही प्राप्त किया जा सकता है। सूजन और रक्ताधिक्य के रोगों मे ये किरणें महौषध का काम करती हैं।

आयुर्वेद और रंग

आयुर्वेद का आधार वात, पित्त और कफ हैं। इनके आधार पर रंगो को इस प्रकार रखा गया है—1. कफ का आसमानी रग, 2. वात का पीला रग 3 पित्त का लाल रग, किस रंग के अभाव से क्या होता है, यह जानने के लिए ध्यातव्य यह है कि प्रमुख और सर्वथा मौलिक दो रग ही हैं—लाल और आसमानी (नीला)। रगों की अधिकता भी हानिकारक है। सुस्ती, अधिक निद्रा, भूख की कमी, कब्ज पतले दस्त शरीर मे लाल रंग की कमी के कारण आते हैं। रक्त का रग लाल है ही। आसमानी के अभाव में क्रोध, झुझलाहट, सुस्ती, अधिक निद्रा और प्रमाद की स्थिति बनती है।

रत्न विज्ञान (रत्न-चिकित्सा) (Gem therapy)

रग विज्ञान अथवा रग चिकित्सा में इन्द्र धनुष का सर्वोपरि महत्व है। परन्तु इन्द्र धनुष के रगों को सीधा उससे ही तो प्राप्त करना सम्भव नही है। अत: सूर्य-किरण द्वारा, चन्द्र-किरण द्वारा एवं रत्न-रग या किरण द्वारा यह कार्य किया जाता है। प्रसिद्ध सात रत्नो के नाम, रग, ग्रह और चक्र इस प्रकार हैं :

रत्न	वर्ण	ग्रह	चक्र
1. लाल	लाल	सूर्य	मूलाधार
2. मोती	नारगी	चन्द्र	सहस्रार
3. मूगा	पीला	मगल	आज्ञा
4 पन्ना	हरा	बुध	मणिपुर

5 पुष्पराग या पुखराज	नीला	बृहस्पति	विशुद्ध
6 हीरा	जामुनी	शुक्र	स्वाधिष्ठान
7 नीलम	आसमानी	शनि	अनाहत

ये सात प्रमुख एव प्रतिनिधि रत्न शाश्वत रूप से सृष्टि को सात रंगो वाली किरणे प्रदान करते है। इन्ही सात रगो को हम इन्द्र-धनुष मे देखते है। इन्ही सात किरणो या रगों की सृष्टि की रचना, रक्षा और विनाश की स्थिति है। नक्षत्रो के समान उक्त सात पवित्र रत्न उक्त सात इन्द्रधनुषी रगो के ही सघन या सक्षिप्त रूप है। इन रत्नों के विषय मे कुछ मूलभूत बाते ये है।

1 सबमे पहली बात यह है कि ये रत्न सदा अपना एक शुद्ध रग ही रखते है और वहभी बहुत अधिक मात्रा मे रखते है। इनमे मिश्रणों की सभावना नही है।

2 ये सभी रत्न अत्यधिक चमकीले होते हैं और अपनी रगीन किरण को सदा प्रकट करते है।

3 ये रत्न अल्कोहल, स्पिरिट और पानी में डाले जाने पर अपनी किरणो का प्रकाश विकीर्ण करते है। इनमे न्यूनता या थकान नही आती।

4. इनके रगो की विश्वसनीयता के लिए तिकोना शीशा (Prism) भी उपयोग मे लाया जाता है।

णमोकार महामन्त्र मे अन्तर्निहित रगो का अपना विशेष महत्त्व है। अर्थ के स्तर पर, ध्वनि के स्तर पर और साधना (योग) के स्तर पर इस महामन्त्र को समझने का या इसमे उतरने का प्रयत्न किया जाता रहा है और इस दिशा मे भारी सफलता भी प्राप्त हुई है। रग-विज्ञान या रग-चिकित्सा का भी एक विशिष्ट एव व्यापक धरातल है। इसके आधार पर अन्य आधारो को भी एक निश्चित कोणो मे रखकर समझा जा सकता है। पाचो परमेष्ठियो का एक सुनिश्चित प्रतीक रग है। अरिहत परमेष्ठी का श्वेतवर्ण, सिद्ध परमेष्ठी का लाल वर्ण, आचार्य परमेष्ठी का पीला वर्ण, उपाध्याय परमेष्ठी का नील वर्ण तथा साधु

परमेष्ठी का श्यामवर्ण हैं। यह वर्ण मान्यता अति प्राचीन काल से चली आ रही है। आज यह प्रमाणित भी हो चुकी है।

हमारी जिह्वा द्वारा उच्चरित भाषा की अपेक्षा दृष्टि में अवतरित रंगो और आकृतियो की भाषा अधिक शक्तिशाली है। महामन्त्र मे निहित रगो की भाषा को स्वय मे उतारने/समझने से अद्भुत तदाकरता की स्थिति बनती है। पच परमेष्ठी के प्रतीकात्मक रंगो को क्रमशः ज्ञान, दर्शन, विशुद्धि, आनन्द और शक्ति के केन्द्रों के रूप मे स्वीकृत किया गया है। ये परमेष्ठी पवित्रता, तेज, दृढता, व्यापक मनीषा एव सतत मुक्तिसघर्ष के प्रतीक भी है। उक्त पच वर्णों की न्यूनता से हमारे शरीर और मन पर गहरा प्रभाव पडता है। अरिहत परमेष्ठी-वाचक रग (श्वेत) की कमी से हमारा सम्पूर्ण स्वास्थ्य बिगडता है और हम कुपथ की ओर बढते हैं। हमारी निर्मलता कमजोर होने लगती है। सिद्ध परमेष्ठी वाचक लाल रग हमारे शरीर की ऊष्मा और ताजगी की रक्षा करता है। इसकी कमी से हमारी मानसिकता बिगडती है। आलस्य और अकर्मण्यता आती है। आचार्य परमेष्ठी का पीतवर्ण है। इसकी न्यूनता होने से हमारी चारित्रिक एव ज्ञानात्मक दृढता घटती है। उपाध्याय परमेष्ठी का नीलवर्ण है। इसकी कमी होने से हमारी शान्ति भग होती है। हममें उच्च स्तरीय ज्ञान और चिन्तन की कमी होने लगती है। हम अशान्त और क्रोधी हो जाते है। साधु परमेष्ठी का रग श्याम का काला माना गया है। यह रग मूल नही है। अनेक रगो के मिश्रण से बनता है। इसी प्रकार श्वेत रग भी अनेक रगों के (सात प्रमुख रगो) मिश्रण से बनता है। श्याम वर्ण की कमी हमारे धैर्य को कमजोर करती है। साथ-ही-साथ हमारी कर्मों के विरुद्ध सघर्ष-शीलता भी कम होती है। साधु वास्तव मे तप, साधना और त्याग के प्रतीक हैं। वे निरन्तर कालिमा-कर्म-कालिमा से जूझ रहे है। अत. उन्हे सघर्षशीलता का प्रतिनिधि परमेष्ठी मान गया है। साधु परमेष्ठी अपने सीधे यथार्थ के कारण हमारे जीवन के सन्निकट होकर हममे सीधे उतरते हैं। प्राचीन ऋषियो, मुनियो और ज्ञानियो ने अपने ध्यान, मनन और अनुभव से उक्त रगो का अनुसन्धान किया है।

मन्त्रस्थ रंगों के अनुभव की प्रक्रिया—

ध्वनि, प्रकाश और रग का अविनाभावी सम्बन्ध है। इनमे क्रम को ध्वनि मे प्रकाश अथवा रग से स्वीकृत किया जासकता है। अतः स्पष्ट है कि इस समस्त चराचर जगत् के मूल मे रग का आदि—आधार के रूप में महत्व है। मन्त्रो मे रग का विशेष महत्व है क्योकि रग के द्वारा एकाग्रता, ध्यान, समाधि और आत्मोपलब्धि तक सरलता से पहुचा जा सकता है। रग से हमे इष्ट की परमेष्ठी की छवि का सधान करना सुगम एव निर्भ्रम हो जाता है।

उदाहरण के लिए हम अरिहत परमेष्ठी के श्वेत रग को ले सकते है। 'णमो अरिहताण' पद के उच्चारण के साथ तुरन्त हमारे तन मन मे अरिहन्त के गुणो की निर्मलता (स्वच्छता-सफेदी) और काया की पवित्रता (स्वच्छता-श्वेतिमा) का एक भाव-चित्र—एक रूपाकृति उभरती है और धीरे-धीरे हम उसका साक्षात्कार भी करते है। यदि किसी भक्त के मन मे ऐसा श्वेतवाणी दृश्य नही बन रहा है तो उसकी तन्मयता मे कही कमी है। उसे और प्रयत्न करना चाहिए। ध्यान मे सहज एकाग्रता आने पर कोई कठिनाई नही होगी। अरिहन्त परमेष्ठी की निर्मल आकृति का आभा मण्डल हमारे मन मे बनेगा ही। हा, यदि पुन पुन प्रयत्न करने पर भी सहज एकाग्रता नही आ रही है तो हमे अपने चारो तरफ अभिप्रेत रग के अनुकूल वातावरण बनाना होगा। हमे श्वेतवर्ण के वस्त्र, श्वेतवार्णी माला और श्वेतवर्णी कक्ष मे बैठकर मन्त्र के इस पद का जाप करना होगा। श्वेतवर्ण की कुछ वस्तुओ को अपनी समीपता मे रखना होगा। अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभु का श्वेतवर्ण माना गया है अत उनकी श्वेतमूर्ति की समक्षता में बैठकर णमोकार मन्त्र का पूरा या केवल णमो अरिहताण का पाठ करना विशेष लाभ-कारी होगा। ध्यान रखना है कि ये सब साधन हैं, साध्य नही। स्वय रग भी साधन ही हैं। रग ही क्यो स्वय सम्पूर्ण मन्त्र भी तो आत्मोप-लब्धि का अद्वितीय साधन ही हैं। श्वेत रग मौलिक रग नही है। सात मौलिक रगो के आनुपातिक मिश्रण से बनता है। अत वास्तव मे देखा जाए तो अरिहन्त परमेष्ठी या अर्हम् मे ही सभी पर-मेष्ठी गर्भित है। जिसके चित्त मे अरिहन्त की श्वेताभा का जन्म हो

गया है, उसे अन्य चार परमेष्ठियों की वर्णाभा प्राप्त करना अत्यन्त सहज होगा।

सभी परमेष्ठियो के रंगो के अनुसार हम अपना चतुर्दिक वातावरण बनाकर भी सिद्धि कर सकते है। हमे अपने शरीर, मन और सम्पूर्ण जीवन के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता है, उसी के अनुरूप हमे आवश्यक पद का जाप करना होगा। समस्त मन्त्र का पाठ तो अद्वितीय फल देता ही है, परन्तु आवश्यकता के अनुरूप एक पद का जाप या मनन भी किया जा सकता है। समस्त मन्त्र के जाप मे श्वेत वर्ण के वस्त्र, श्वेतवर्ण की माला आदि से सर्वाधिक लाभ होगा। मनस्तृप्ति होगी। द्वितीय श्रेष्ठ वर्ण है नीला। मूल सात रगो मे से तीन रग नील-परिवार के हैं। इन्द्र-धनुष के रगो से यह तथ्य प्रमाणित है ही।

हमारे शास्त्रों में भी चौबीस तीर्थंकारों के रग वर्णित है। रंग निहित शक्ति का द्योतक होता है। ऋषभ, अजित, सभव, अभिनन्दन, सुमति, शीतल, पार्श्व, श्रेयास, विमल, अनत, धर्म, शान्ति, कुथु, अरह, मल्लि, नमि, महावीर के वर्ण सुवर्ण (तप्त स्वर्ण-कुन्दन जैसे) माने गये हैं पद्म एव वासुपूज्य का लाल वर्ण माना गया है। चन्द्र प्रभु एव पुष्पदन्त के श्वेतवर्ण स्वीकृत है, मुनिसुव्रत एवं नेमि के श्यामवर्ण हैं। पार्श्वनाथ का नील श्यामवर्ण हैं।

हमारे समस्त शरीर मे मूल सातो रग हमारी कोशिकाओं मे व्याप्त हैं—सचित है। ये सभी शरीर को सक्रिय और स्वस्थ रखने मे अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि इनमे से एक रग की भी कमी हो जाए तो शरीर का क्रियाक्रम भग होने लगता है। रगों की कमी की पूर्ति हम दवा से करते है। मन्त्र मे रगो का भण्डार है जिससे हम शरीर के स्तर पर ही नही आत्मा के स्तर पर भी लाभान्वित हो सकते हैं। णमोकार महामन्त्र मे परमेष्ठियो का सामान्यतया समान महत्त्व है। परन्तु शास्त्रो मे क्रम निर्धारित किया गया है। इस मन्त्र मे भी कभी-कभी हम क्रम के आधार पर छोटे-बड़े का निर्णय करने की नादानी करने लगते हैं। वास्तव मे ये सभी परमेष्ठी त्रिकाल-दृष्टि से देखने पर समान महत्त्व के हैं। वर्तमान काल मात्र देखने से भ्रम पैदा होता है।

पचपरमेष्ठियो के क्रम-निर्धारण मे वैज्ञानिकता की भी अद्भुत गुजायश है। सीधे क्रम की वैज्ञानिकता है कि श्वेतवर्ण सब वर्णो का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी ओर अन्तिम परमेष्ठी से प्रथम परमेष्ठी तक श्याम से श्वेत बनने तक की पूरी प्रक्रिया को भी समझा ही जा सकता है। उत्तरोत्तर आत्मा की विकसित अवस्था को देखा जा सकता है। वास्तव मे यह क्रम वास्तविक और व्यवहारिक दोनो धरातलो पर खरा उतरता है।

महामन्त्र मे अन्त स्यूत रगो के माध्यम से आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया का खुलासा इस प्रकार है कि हम सर्वप्रथम मन्त्र के प्रति अपनी मनोभूमि तैयार करते है। दूसरे सोपान पर हम उसका (मन्त्र का) जाप, मनन एव उच्चारण करते है। उच्चारण या मनन से हमारे सम्पूर्ण शरीर एव मन मे एक अद्भुत आभामण्डल अथवा भावालोक पैदा होता है। उच्चरित ध्वनिया मूलाधार से आरम्भ होकर समस्त चक्रो मे व्याप्त होकर एक नाद का रूप लेती है। वह नाद सघन होकर एक आभा मे प्रकाश मे बदल जाता है। यह प्रकाश सारे चैतन्य मे व्याप्त हो जाता है। घनीभूत प्रकाश अपनी अभिव्यक्ति के लिए विवश होकर आकृति मे बदलता है और आकृति रग मे होगी ही। आशय स्पष्ट है कि ध्वनि से आकृति (रग) तक की प्रक्रिया मे ही मन्त्र अपनी पूर्ण सार्थकता मे उभरता है। इस बात को हम इस प्रकार भी कह सकते है कि ध्वनि अपनी पूर्ण अवस्था मे आकृति या रग मे ढलकर ही सम्पूर्णतया सार्थक होती है। इसे हम ध्वनि विश्लेषण की प्रक्रिया भी कह सकते हैं या रग विज्ञान की पूर्वावस्था का आकलन भी कह सकते है।

आपके शरीर मे आपका जो मूल स्थान है जिसे हम ब्रह्मयोनि या कुडलिनी कहते है, वही से ऊर्जा का पहला स्पन्दन प्रारम्भ होता है। ध्वनि का विकास कैसे होता है, ध्वनि मे नाद का जन्म कैसे होता है, किसको हम बिन्दु, नाद और कला कहते हैं। उन्ही कलाओ से मन्त्र का विकास, काम का विकास होता है और शरीर के अन्दर चय, उपचय, स्वास्थ्य का ह्रास या वृद्धि भी वही से होती है। एक विशिष्ट अक्षर एक विशिष्ट तत्त्व का ही प्रतिनिधित्व क्यो करता है? बात यह है कि प्रत्येक अक्षर एक आकृति से बधा हुआ है। प्रत्येक ध्वनि एक विशिष्ट

प्रकार की आकृति को उत्पन्न करती है। प्रत्येक आकृति एक तत्त्व से बंधी हुई है और प्रत्येक तत्त्व कुछ निश्चित भावनाओं, इच्छाओं, विचारों और क्रियाओं से बंधा हुआ है।

उदाहरण के लिए आप णं का उच्चारण करिए। किसी तत्त्व की जानकारी के लिए आप उसका अनुस्वार के साथ उच्चारण कीजिए। फिर अनुभव कीजिए कि वह आपको किधर ले जा रहा है। आपकी नाभि से एक ध्वनि उठती है वह आपको ब्रह्म रन्ध्र की ओर या मूलाधार की ओर या अनहत की ओर या नाभि की ओर ले जा रही है। इससे पता चलता है कि ण और म कहते ही हमारा विसर्जन होता है, हम किसी मे लीन होने लगते हैं। 'ण' नही अर्थात् अस्वीकृति या त्याग चेतना का द्योतक है और इसके (ण के) साथ ही हम इस त्याग चेतना से भर जाते हैं। और पूरा 'णमो' बोलते ही हमारा समस्त अहंकार विसर्जित हो जाता है। हम हल्के निर्विकार होकर आकाश की ओर उठते है। ण और म के मिलन से वही स्थिति होती है जो अग्नि और जल के मिश्रण से होती है। अग्नि के सम्पर्क से जल वाष्प बन जाता है अर्थात् ऊर्जा (Energy) मे परिवर्तित हो जाता है।

प्रत्येक वर्ण और अक्षर के विश्लेषण मे रंग का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। आकृति आएगी तो उसमें वस्तुए भी उभरेंगी ही। कान बन्द करने के बाद बिना वर्णों की ध्वनि जो हम सुनते हैं वह अनाहत कहलाती हैं। ध्वनि का विभिन्न चक्रो से सम्बन्ध होता है। चक्रो का अर्थ है तत्त्व और तत्त्व का अर्थ है विभिन्न प्रकार के रंग और रंगो से प्रकाश प्रकट होता ही है। जो ध्वनि सीधी निकलती है उसका रंग अलग है और जो ध्वनि गुच्छ में से (चक्र या कमल मे से) निकलती है उसका रंग कुछ और ही होता है। आशय यह है कि ध्वनि चक्रो से सम्बद्ध होकर शक्ति और ऊर्जा बदलती है।

जर्मन डा० अर्नेस्ट क्लाडनी और जेनी ने प्रयोग किये। उनके प्रयोगो से यह सिद्ध हो गया कि ध्वनि और आकृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्टील की पतली प्लेट पर बालू के कण फैलाए गये और वायलिन के स्वर बजाए गये तो पाया गया कि इन स्वरो के कारण बालू के कण विभिन्न आकारों को धारण करते हैं। डॉ० जेनी का प्रयोग ध्वनि और

आकृति के सम्बन्ध की ओर भी पुष्ट करता है। उन्होने टेलोस्कोप नाम का यन्त्र बनाया। यह यन्त्र बोले गये शब्दो को माइक्रोफोन से निकालता है और सामने वाले पर्दे पर उनके आकारों को प्रस्तुत कर देता है—उन्हे आकारों मे बदल देता है। ओम का उच्चारण करने पर इस यन्त्र के कारण पर्दे पर वर्तुलाकार दिखाई देता है और जब 'म' का चिन्ह धीरे-धीरे लुप्त होना है तो वही आकार त्रिकोण और षट्कोण मे बदल जाता है।

यह सम्पूर्ण विश्व ध्वनि और आकृति का ही एक खेल है। इसी को हमारे प्राचीन ऋषियो-मुनियो ने नाम रूपात्मक जगत् कहा है। इस विश्व की प्रत्येक वस्तु ध्वनि-आकृतिमय है। इसी को दूसरे शब्दो मे यो कहा जा सकता है कि प्रत्येक वस्तु प्रकम्पायमान अणु-परमाणुओ का समूह है। प्रत्येक वस्तु मे अणुओ के प्रकम्पनो की आवृति (Frequencies) आदि की विविधता है।

प्राचीन काल मे ऋषियो-योगियो ने अपने अन्तर्ज्ञान से जाना कि जब ध्वनि आकृति मे बदल सकती है तो वह द्रव्य मे भी बदल सकती है। उन्होने उस द्रव्य पर नियन्त्रण करने के लिए उस ध्वनि को ही माध्यम बनाया। उन्होंने द्रव्य विशेष पर ध्यान दिया, उस पर अपने मन को अत्यन्त एकाग्र किया और जाना कि उससे एक विशेष प्रकार का स्पन्दन आ रहा है और वह स्पन्दन उस द्रव्य के सारे शक्ति-व्यूह को अपने मे लिए हुए है। स्पन्दन के माध्यम से पदार्थ के शक्ति-व्यूह को पकडा जा सकता है। र ध्वनि से अग्नि को पैदा किया जा सकता है। ऋषियो ने अनुभव किया कि जब भी कोई वस्तु तरल से सघन होने लगती है तो उसमे से ल ध्वनि आने लगती है। 'लम्' ध्वनि पृथ्वी तत्त्व की जननी है। 'वम्' ध्वनि जल तत्त्व का आधार है। जल जब बहता है तो उसमे 'वम्' ध्वनि प्रकट होती है। इसी प्रकार 'वम्' ध्वनि से जल को—शीतलता को पैदा किया जा सकता है। 'यम्' ध्वनि वायु का आधार है, 'हम्' आकाश का आधार है। ह ध्वनि से आकाश को प्रभावित किया जा सकता है।

इस प्रकार प्रत्येक तत्व एव वस्तु की स्वाभाविक ध्वनि को पकडने की कोशिश की और इस स्वाभाविक ध्वनि के माध्यम से उस तत्त्व

था पदार्थ के शक्ति-व्यूह को उसके गुणों को, उसकी वैयक्तिकता को पहिचाना गया। क्रम रहा—वस्तु से ध्वनि, ध्वनि से तत्त्व, तत्त्व से शक्ति-व्यूह, शक्ति व्यूह से भावना और विचार इसी प्रकार वर्ण किस तत्त्व को प्रभावित करता है, वह किस शक्ति-व्यूह (Electric Current) को पकड रहा है, इसको खोजा गया परिणामतः प्रत्येक वर्ण को उसके विशिष्ट तत्त्व से जोड दिया गया।

जहां तक इन वर्णों की आकृति का सम्बन्ध है यह पहले ही कहा जा चुका है कि हर ध्वनि आकृति को पैदा करती है। ध्वनि और आकृति सम्बन्ध वैसा ही है जैसा कि शरीर और शरीर की छाया का। जब हम शब्दो को बोलते हैं तो उनकी आकृति आकाश में उसी तरह अकित होती चली जाती है जैसी कि फोटो लेते समय फोटो की विषय-वस्तु का चित्र कैमरे के प्लेट पर अंकित हो जाता है। ध्वनियो की इन अकित आकृतियों को प्राचीन ऋषियो ने आकाश में देखा है। अ, आ, इ, ई आदि स्वर कैसे बने एव अन्य व्यजन कैसे बने ? इनके पीछे जो कहानी है वह उच्चारण आकृति और प्रतिलिपि की कहानी है। सस्कृत और प्राकृत भाषा मे यह प्रयोग अत्यन्त सरलता से किया जा सकता है। स्पष्ट है कि इस लिखी गयी आकृति मे और आकाश पर अकित आकृति मे अद्भुत साम्य है।

आज विज्ञान के प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि ध्वनि को प्रकाश में बदला जा सकता है। विभिन्न प्रकम्पन आवृत्ति (Frequencies) मे प्रवृत्त होने वाला प्रकाश ही रंग है। प्रकाश, रंग एव ध्वनि पृथक्-पृथक् तत्त्व नही है अपितु एक ही तत्त्व के अलग-अलग पर्याय या प्रकार है। इनमें से किसी एक के माध्यम से अन्य दो को प्राप्त किया जा सकता है।

रग का जगत् हमारे मानसिक और बाह्य जगत् को सफलतापूर्वक प्रभावित कर सकता है। रूस की एक अन्धी महिला हाथों से रगो को छूकर उनसे उत्पन्न होने वाले भावो का अनुभव कर लेती थी। वह थोड़ी ही देर मे उन रंगों का नाम भी बता देती थी। लाल रग की वस्तु को छूने पर उसे गरमाहट का अनुभव होता था। हरे रग का स्पर्श करते ही उसे प्रसन्नता का अनुभव होता था। नीले रग की वस्तु को छूने पर उसे ऊचाई और विस्तार का अनुभव होता था। मन्त्र और

उनसे उत्पन्न होने वाले रंग हमारे आन्तरिक एव बाह्य जगत् के विकास एव ह्रास मे महत्त्वपूर्ण योग देते हैं।

णमोकार महामत्र के पांचों पदो के पाच प्रतिनिधि रंग हैं, इससे हम परिचित ही हैं। किस रग का हमारे लौकिक और पारलौकिक जीवन पर क्या प्रभाव पडता है, यह जानने की हमारी सहज उत्सुकता होती ही है। पर, रग पैदा कैसे होते है? रग पैदा होते है प्रकम्पन आवृत्ति के द्वारा (Frequency) फ्रीक्वेन्सी कैसे और किससे पैदा होती है?—वह शब्द या ध्वनि के फैलाव से पैदा होती है। सात हजार की फ्रीक्वेन्सी से लाल रग पैदा होता है। णमो सिद्धाण की ध्वनि से सात हजार की फ्रीक्वेन्सी पैदा होती है—इसीलिए लाल रग है उसका। णमो आयरियाण 6000 की ध्वनियो की फ्रीक्वेन्सी उत्पन्न करने की शक्ति है। 6000 की फ्रीक्वेन्सी पीले रग को उत्पन्न करती है। णमो उवज्झायाण मे 5000 की फ्रीक्वेन्सी की ताकत है अर्थात् णमो उवज्झायाण की ध्वनि मे 5000 की फ्रीक्वेन्सी की शक्ति है। इससे स्वत ही नीला और हरा रग पैदा हो जाता है।

ध्वनियो के सघात से, जप से, उच्चारण से किस प्रकार की फ्रीक्वेन्सी पैदा होती है? यह ईश्वर मे प्रकम्पन पैदा करती है। इन रंगो का शरीर के विभिन्न भागो पर प्रभाव पडता है। यह प्रभाव क्षतिपूरक एवं शक्तिवर्धक होता है। हीलिंग मे प्राण और रग महत्त्वपूर्ण है।

मन्त्रस्थ रगो का शरीर और मन पर प्रभाव—'णमो अरिहताण' पद का श्वेत रग आपको रोगो से बचाता है और आपकी पाचन शक्ति को ठीक करता है। मानसिक निर्मलता और सरक्षण शक्ति भी इसी पद के श्वेतवर्ण से प्राप्त होती है। 'णमो सिद्धाण' का लाल वर्ण शक्ति क्रिया और गति का पोषक है। नियन्त्रण शक्ति (Controling power) भी इससे ही बढती है। 'णमो आइरियाण' का पीला रंग सयम और आत्मबल का वर्धक है। चारित्र्य का भी यह पोषक है। 'णमो उवज्झायाण' शरीर मे शान्ति एव समन्वय पैदा करता है। इस नीले की महिमा है। हृदय, फेफडे, पसलियो को भी यह रग ठीक करता है। 'णमो लोए सब्व साहूणं' का काला रग है। यह शरीर की निष्क्रियता और अकर्मण्यता को दूर करता है। कर्म दमन और सघर्ष शक्ति इस वर्ण मे है। साधु परमेष्ठी अनथक सघर्ष के प्रतीक हैं।

प्रकृति, तत्त्व, रंग—प्रकृति पंच तत्त्वों के माध्यम से प्रकट होती है। प्रकृति का अर्थ है सृष्टि की मूल एनर्जी (ऊर्जा)। प्र का अर्थ है प्रकृष्ट गुण अर्थात् पैदा होना। कृ का अर्थ है क्रियाशील होना अर्थात् स्थिर होना। 'ति' का अर्थ है नष्ट होना। तो प्रकृति शब्द का पूर्ण अर्थ हुआ—बनना, स्थिर होना और नष्ट होना। इसी प्रकार प्र—सतोगुण, कृ—रजोगुण और ति—तमोगुण के प्रतिनिधि अक्षर है। इन तीन में ही समस्त ससार बसा हुआ है। णमोकार मन्त्र इस सबको जानने की कुजी है।

तत्त्व और उनका प्रवाह—हम अपनी नासिका को हवा की दिशा और गति के द्वारा अपने भीतर के तत्वों की स्थिति को जान सकते हैं। पृथ्वी का प्रवाह 20 मिनट तक, जल तत्त्व का प्रवाह 16 मिनट तक, वायु का 12 मिनट तक, अग्नि तत्त्व का 8 मिनट तक और आकाश का प्रवाह नासिका वायु में 4 मिनट तक चलता है। नासिका में बायी ओर चन्द्र स्वर है और दायी ओर सूर्य स्वर है। शरीर मे आनुपातिक शीतलता और उष्णता जरूरी है। अनुपात बिगडने पर रोग आते है। यदि नासिका की हवा नीचे की ओर चल रही है तो वह जल तत्त्व प्रधान है। तिरछी ओर है तो पृथ्वीतत्त्व है। ऊपर की ओर जा रही है तो अग्नि तत्त्व है। चारो तरफ बह रही है तो वायु तत्त्व है। यदि कुछ स्पर्श करती हुई ऊपर जाती है और वही समाप्त हो जाती है तो वह आकाश तत्त्व है। पृथ्वी 12, जल 16, वायु 8, अग्नि 6, आकाश 4 अगुल तक अपनी दिशा मे जा सकता है।

सार चित्र
नासिका विवरों की हवा और तत्त्व

	पृथ्वी तत्त्व	जल	वायु	अग्नि	आकाश
प्रवाह क्षण (मिनट)	20	16	12	8	4
दिशा	तिर्यक् गति	अधो गति	चतुर्दिक	ऊर्ध्व गति	कुछ ऊर्ध्वमुखी अल्प जीवी
गति	12 अंगुल पर्यन्त	16 अगुल पर्यन्त	8 अगुल पर्यन्त	6 अंगुल पर्यन्त	4 अंगुल पर्यन्त

णमोकार मन्त्र मे सम्मोहन (Hypnotising) के भी रास्ते हैं। इसकी कतिपय ध्वनिया ऐसी हैं जो मानव को हिप्नोटाइज (सम्मोहित) कर सकती है। जैसे णं है। ण क्या है ? ण मे एक बडी शक्ति है। इसमे तीन स्तम्भ है। कैसा भी दर्द हो, किसी भी अग मे हो, उसको 'ण' द्वारा दूर किया जा सकता है। 'ण' पहले दर्द वाले हिस्से को हिप्नोटाइज करेगा फिर दवा देगा।

अर्हम्—आपके पास 49 ध्वनिया हैं। इनमे पहली ध्वनि है अ; और अन्तिम ध्वनि है ह। ये दोनो ध्वनिया कण्ठ से पैदा होती हैं। अर्हम् मूल मन्त्र है। ध्वनि के साथ उच्चरित करने पर उसमे प्रकाश एव रग पैदा हो जाते हैं। पहला सफेद प्रकाश है। वही ह्री कर देने पर लाल हो जाता है क्योकि उसमे र मिल गयी है। जब वह ह्रा (आ) रूप मे उच्चरित होता है तो पीत प्रकाश आता है। ह (उ) कहते ही नीला प्रकाश आता है और स कहते ही रग एव प्रकाश काला हो जाता है। णमोकार मन्त्र सृष्टि का मूल है। सभी प्रतिनिधि अक्षर मातृकाए उसमे है। अर्हम्, ओम, ह्रो के—एकमात्र के कहने पर भी वही णमोकार मन्त्र बनता है। व्याख्या और परिपूर्णता के लिए—बोध के लिए इसे विस्तृत किया गया। इस पूर्ण मन्त्र को सुविधा के लिए सक्षिप्त किया गया यह भी हम कह सकते है।

रंगो की अनुभूति कैसे--दो प्रकार के आसन होते है—सगर्भ और अगर्भ। जब हम श्वास को मन्त्र मे बदलते है तब सगर्भ आसन होता है। जब हम श्वास का दर्शन करते है तब अगर्भ आसन होता है। प्राण वायु की गति ऊर्ध्व की है और अपान वायु की नीचे का है। इसको उलटे रूप मे कैसे करे। जिस समय आप सीवन को दबा कर अपान के निस्सरण की प्रक्रिया को रोक देगे तो अपान वायु स्वत ही ऊपर को उठना प्रारम्भ कर देगी। अपान वायु ठण्डी है और प्राण वायु गर्म है। जब अपान गर्म हो जाएगी तो ऊपर को भागेगी ही। हर ठण्डी वस्तु को नीचे से गर्मी दी जावे तो वह ऊपर को भागेगी ही। लोहे को गैस से ही काटा जा सकता है। सिर्फ नीली गैस छोडते हैं और काटते है। वह नीली गैस ही आक्सीजन होती है। उसमे नाइट्रोजन और कार्बन ये सब चीजें मिली हुई है। फैक्टरी मे गैसो को अलग करते है। जो ठण्डी होती है वो

चुप हो जाती है और जो गर्म हो जाती है वो टिक जाती है। जब सिर्फ आक्सीजन रह जाती है तो उसमे काटने की शक्ति बढ़ जाती है।

इस दुनिया मे साइकिक (मानसिक इच्छा द्वारा) सर्जरी हो रही है इसका अर्थ है—मानसिक इच्छा द्वारा आपरेशन करना। पेट खोल देना, पेट बन्द कर देना। अपने पर भी तथा दूसरे पर भी यह की जा सकती है। णमोकार मन्त्र का मूलाधर ध्वनि है। ध्वनि ही प्रकृति की ऊर्जा का मूल स्वरूप है। इस प्रकृति मे जो मूलभूत शक्ति है उसके अनन्त रूप हैं। वे बनते हैं, स्थिर रहते हैं और नष्ट होते हैं। स्पष्ट है कि प्रकृति ध्वनि के माध्यम से प्रकट होती है। ध्वनि प्रकाश मे ढलकर रग और आकार ग्रहण करती है। महामन्त्र का सस्वर जाप या उच्चारण करते-करते शरीर मे अपेक्षित रग और आकृतियों की अवतारणा होगी। ध्वनि तरग धीरे-धीरे विद्युत् तरंगो में बदलेगी और फिर यह विद्युत तरंग रग और आकृति मे ढलेगी ही। इसके बाद भक्त स्वय की पूर्णता का साक्षात्कार कर सके ऐसी क्षमता की स्थिति में पहुच जाता है।

महामन्त्र में केवल तीन पद हैं—महामन्त्र णमोकार की प्रमुखता है—प्राकृतिक ऊर्जा का जागरण। प्रकृति के अपने क्रम मे तीन स्थितियां हैं—उत्पत्ति, स्थिति, और विनाश। णमोकार मन्त्र में णमो उवज्झायाण पद उत्पत्ति—ज्ञान, उत्पादन का है। णमो सिद्धाण पद स्थिति का है। णमो अरिहन्ताण पद नाश-कर्मक्षय का है। आचार्य और साधु परमेष्ठी उपाध्याय मे ही गर्भित हैं। अतः इस प्रकृति और ऊर्जा के स्तर पर मन्त्र के तीन ही पद बनते हैं। उत्पत्ति, स्थिति और व्यय (नाश) और पुन-पुन. यही क्रम—ये तीन अवस्थाएं ऊर्जा की हैं। मिट्टी, पानी, हवा, अग्नि ये सब ऊर्जा के क्षेत्र है। जब ऊर्जा ठोस (Solid) होती है तो मिट्टी बन जाती है। तरल होने पर जल और जब जलती है तो अग्नि बनती है। बहने पर वायु बनती है। जब केवल ऊर्जा ही—(ऊर्जा मात्र ही) रह जाती है तो वह आकाश हो जाती है। इन पाचों तत्त्वों के अलग रग हैं। इनके अपने-अपने केन्द्र हैं, इनकी अपनी प्रतीकात्मकता है। इन रगो की मानव शरीर मे न्यूनता का गहरा प्रभाव पडता है। ये रग, शक्ति केन्द्र, प्रतीक, और इनकी न्यूनता को पंच परमेष्ठी के साथ जोडकर देखने से पूरा चित्र प्रस्तुत हो जाता है। सार चित्र इस प्रकार है—

पंचपरमेष्ठी	वर्ण (रंग)	शक्ति केन्द्र	प्रतीक	रंग न्यूनता का प्रभाव
अरिहन्त	श्वेत	ज्ञान	स्फटिक	अस्वास्थ्य
सिद्ध	लाल	दर्शन	बाल रवि	प्रसाद, विक्षिप्तता
आचार्य	पीला	विशुद्धि	दीपशिखा	बौद्धिक ह्रास
उपाध्याय	नीला	आनन्द	नभ	क्रोध
साधु	काला	शक्ति	कस्तूरी	प्रतिरोध शक्ति

पीत वर्ण या पीला रग मिट्टी तत्त्व के निर्माण में सहायक है। जल तत्त्व के लिए ऊर्जा को श्वेत रूप धारण करना होता है। अग्नि तत्त्व के लिए लाल रग आवश्यक है। नीला रग वायु तत्त्व का जनक है। आकाश तत्त्व के लिए भी नील वर्ण आवश्यक है। राग-द्वेष को स्थिर करके ही जल तत्त्व को नियन्त्रित किया जा सकता है। जल तत्त्व से हमारा मूत्र ही नही अपितु रक्त एव शरीर की सारी इच्छाए चालित होती है। णमो अरिहताण मे श्वेत तरग है। अ और ह मे जल तत्त्व है। र मे अग्नि तत्त्व है। जल और अग्नि से हम गला, नाभि, हृदय को स्वच्छ-स्वस्थ रख सकते है। इन अगो की स्वच्छता श्वेतवर्ण वर्धक होती है। रग के बिना कोई वस्तु दिखाई नही देती। रगो के द्वारा हमारी बीमारी का पता चलता है। डॉ० बीमार व्यक्ति की आख, जीभ, पेशाब, थूक, क्यो देखता है ? इनके रगो से वह रोग को तुरन्त जान लेता है। पृथ्वी तत्त्व का पीला रग शरीर मे व्याप्त है। इसकी कमी से रुग्णता आती है। किन्तु यदि मूत्र मे पीलापन हो तो वह रोग का कारण होता है। मूत्र का वर्ण जल तत्त्व के कारण श्वेत होना चाहिए। सफेद रग अरिहन्त का है। एक श्वेत रग रोग का है और एक श्वेत रग स्वास्थ्य का है। इस शरीर को तुच्छ, हेय और नाशवान् कहकर उपेक्षा करने से हम णमोकार मन्त्र को नही समझ सकते। शरीर की समझ और स्वास्थ्य से हम ससार को समझ सकते हैं।

संसार को समझकर उसे नियन्त्रित कर सकते हैं और फिर आत्म-कल्याण की सहजता को पा सकते है।

णमोकार विज्ञान, अरिहन्त विज्ञान या जैन धर्म शक्तिशालियों का धर्म है, कमजोरों का नही। परम्परा और मशीन बन जाने से इसकी ऊर्जा और प्राणवत्ता तिरोहित हो गयी है। आत्मा और शरीर के सम्बन्ध को सन्तुलित दृष्टि से समझकर ही चलना श्रेयस्कर होगा।

निष्कर्ष—महामन्त्र के रंगमूलक अध्ययन से अनेक प्रकार के लाभ हैं।

1 प्रकृति से सहज निकटता एव स्वय में भी प्रकृति के समान विविधता, एकता और व्यापकता की पूर्ण सम्भावना बनती है।

2 शब्द से शब्दातीत होने मे रग सहायक हैं। अनुभूति की सघनता, मे भाषा लुप्त हो जाती है। धीरे-धीरे आकृति भी विलीन हो जाती है। ध्वनि, प्रकाश और चैतन्य ज्योति की यात्रा है।

3 रग तो साधन है—सशक्त साधन। सिद्धि की अवस्था मे साधन स्वत लीन हो जाते है।

4. तीर्थंकरो के भी रगो का वर्णन हुआ है। ध्यान में आकृति और रग का महत्त्व है ही।

5. रग-चिकित्सा का महत्त्व सुविदित है। णमोकार मन्त्र के पदो के जाप से विभिन्न रगों की कमी पूरी की जा सकती है। रंगो को शुद्ध भी किया जा सकता है।

6 इन्द्रधनुष के सात रगो का महत्त्व, रग चिकित्सा का महत्त्व, रत्न चिकित्सा का महत्त्व और रश्मि चिकित्सा का महत्त्व भी समझना आवश्यक है।

7 स्थूल माध्यम से धीरे-धीरे ही सूक्ष्म भावात्मक लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। रग हमारे शरीर के एव मन के सचारक एवं नियन्त्रक तत्त्व हैं अत. इनके माध्यम से हमारी आध्यात्मिक यात्रा अर्थात् मन्त्र से साक्षात्कार की यात्रा सहज ही सफल हो सकती है।

आकृति और रंग का मनो-नियन्त्रण में सर्वाधिक महत्त्व है। कृति आकृति हीन होकर कैसे जीवित रह सकती है ? कृति को जैव धरातल पर आना ही होगा। इसके बाद ही वह भावलोक की अनन्तता में शाश्वत विचरण कर सकती है।

णमोकार मन्त्र के अक्षर, तत्त्व और रंग

वर्ण	तत्त्व	रंग
णमो	आकाश	सफेद
अ	वायु	"
रि	अग्नि	"
ह	आकाश	"
ता	वायु	"
ण	आकाश	"
णमो	आकाश	लाल
सि	जल	"
द्धा	पृथ्वी	"
ण	आकाश	"
णमो	आकाश	पीला
आ	वायु	"
य	वायु	"
रि	अग्नि	"
या	वायु	"
ण	आकाश	"

णमो	आकाश	नीला
उ	पथ्वी	"
व	जल	"
ज्क्षा	पृथ्वी	"
या	वायु	"
ण	आकाश	"

णमो	आकाश	काला
लो	पृथ्वी	"
ए	वायु	"
स	जल	"
व्व	जल	"
सा	जल	"
हू	आकाश	"
ण	आकाश	"

सम्पूर्ण मन्त्र में पृथ्वी तत्त्व सख्या 4, जल तत्त्व सख्या 5, अग्नि तत्त्व सख्या 2, वायु तत्त्व सख्या 7, आकाश तत्त्व संख्या 12 है।

योग और ध्यान के सन्दर्भ में णमोकार मन्त्र

समस्त विश्व के ऋषियो, सन्तो और विद्वानो ने अपने जीवन के अनुभव के आधार पर मानव के दु खो का मूल-कारण, चित्त की विकृति से उत्पन्न होने वाली अशान्ति को माना है। शारीरिक कष्टो का प्रभाव भी मन पर पडता है। पर, मन यदि स्वस्थ एव प्रकृत्या शान्त है तो वह उसे सहज एव निराकुल भाव से सह लेता है। मानसिक रुग्णता सबसे बडी बीमारी है। इसी मन की भटकन या दिशान्तरण को रोकने के लिए सबसे बडी भूमिका अदा करता है। वस्तुत चित्त का अवाछित दिशान्तरण रुकना ही योग है। महर्षि पतजलि ने अपने योग शास्त्र मे कहा है 'योगश्चित्तवृत्ति निरोध ।' जैन शास्त्रो मे भी चित्तवृत्तियो के निरोध को योग कहा गया है। आत्मा का विकास योग और ध्यान की साधना पर ही अवलम्बित है। योगबल से ही केवल-ज्ञान की प्राप्ति होती है और समस्त कर्मो का क्षय किया जाता है। सभी तीर्थकर परमयोगी थे। समस्त ऋद्धिया और सिद्धिया योगियो की दासिया हो जाती है परन्तु वे कभी इनका प्रयोग नही करते। इनकी तरफ दृष्टिपात भी नही करते।

योगशब्द का अर्थ और व्याख्या—युज् धातु से घञ् प्रत्यय के योग से 'योग' शब्द सिद्ध होता है। 'युज्' शब्द द्वयर्थक है। जोडना और मन को स्थिर करना ये दो अर्थ योग शब्द के है। प्रथम अर्थ तो सामान्य जीवन से सम्बद्ध है। द्वितीय अर्थ ही प्रस्तुत सन्दर्भ में हमारा अभिप्रेत है। मन को ससार से मोडकर और अध्यात्म मे जोडकर स्थिर करना ही योग है। योग के इसी भाव को कर्म योग के प्रसग मे 'श्रीमद् भगवत्गीता' मे 'योग कर्मसु कौशलयम्' कहकर प्रकट किया गया है। 'गीता' मे कर्त्तव्य कर्म को प्रधानता दी गयी है। कर्म मे कौशल चित्त की एकाग्रता के अभाव मे सम्भव नही है। जैन शास्त्रो मे ध्यान शब्द

का प्रयोग प्राय: योग के अर्थ में किया गया है। योग के आठ अंग माने जाते हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन योगाङ्गों के निरन्तर अभ्यास से साधक का चित्त सुस्थिर हो जाता है। तन के नियन्त्रण और वशीकरण का मन पर सहज ही व्यापक प्रभाव पडता है। इसीलिए व्रत उपवास आदि भी किये जाते हैं।

यम और नियम—जैन धर्म में त्याग और निवृत्ति का प्राधान्य है। अत: यम-नियम के स्वरूप को निवृत्ति के धरातल पर समझना होगा। विभाव अर्थात् ऐसे सभी भाव जो मानव की सांसारिक लिप्सा का पोषण करते हैं उनसे दूर रहकर स्वभाव अर्थात् आत्म स्वरूप में लीन होना यम-नियम का मूल स्वर है। संयम यम का ही विकसित रूप है। यम के मुख्य दो भेद हैं—प्राणि-सयम एवं इन्द्रिय-संयम। मन, वचन, काय से और कृत, कारित, अनुमोदन से किसी भी प्राणी की हिंसा न करना और यथासम्भव रक्षा करना प्राणी संयम है। अपनी पचेन्द्रियों पर मन, वचन, काय से संयम रखना इन्द्रिय सयम है। हमे राग और द्वेष दोनो से ही बचना है। ये दोनों ही संसार के कारण हैं। नियम के अन्तर्गत व्रत, उपवास, सामयिक पूजन एव स्तवन आदि आते हैं। इनका यथाशक्ति निष्ठापूर्वक पालन करना चाहिए। योगसाधन में हम शारीरिक और मानसिक नियन्त्रण द्वारा आत्मा के विशुद्ध स्वरूप तक पहुचते हैं। यम, नियम के द्वारा हम इहलोक और परलोक को सही समझकर अपना जीवन सुचारु रूप से चला सकते हैं।

आसन—'इच्छा निरोधस्तप·' अर्थात् इच्छाओ को रोकना और समाप्त करना तप है। एक सकल्पवान् व्यक्ति ही अपने जीवन के सही लक्ष्य तक पहुच सकता है। मन के नियन्त्रण और उसकी शुचिता के लिए शरीर को भी स्वस्थ एव अनुकूल रखना होगा। यह कार्य आसन द्वारा सम्भव है। आसन का अर्थ है होने की स्थिति या बैठने की पद्धति। योगी को आसन लगाने का अभ्यास करना परमावश्यक है। योगासन हमें स्वस्थ रखने मे तथा हमारे मन को पवित्र एवं जागृत रखने मे अचूक शक्ति है। सामान्यतया आसनों की सख्या शताधिक है। हठयोग मे तो आसनों की संख्या सहस्त्रों तक है। जीव यौनियो के समान आसनो की सख्या भी चौरासी लाख बतायी है। प्रधानता के

आधार पर केवल चौरासी आसन ही मान्य एवं प्रचलित हैं। आङ् उपसर्ग पूर्वक सन् धातु से सज्ञारूप आसन शब्द निष्पन्न होता है। आङ् का अर्थ है—मर्यादा पूर्वक तथा पूर्णतया और सन् का अर्थ है—**बैठना** या ठहरना। स्पष्ट है कि आसन से शरीर का ही नही मन का भी परिष्कार होता है। मन्त्र-पाठ मे भी आसन का अपना विशिष्ट महत्त्व है।

योगी अथवा गृहस्थ को चाहिए कि वह ध्यान के लिए उचित स्थान एव उचित आसन को चुने। सिद्धक्षेत्र, जलाशय (नदी तट, समुद्र तट) पर्वत, अरण्य, गुफा, चैत्यालय अथवा एकान्त, शान्त, पवित्र स्थान आसन के लिए उपयोगी है। आसन चौकी पर, चट्टान पर, बालुका पर या स्वच्छ भूमि पर लगाना चाहिए। पद्मासन, पर्यंकासन, वज्रासन, सुखासन, कायोत्सर्ग एवं कमलासन ध्यान के लिए उपयोगी आसन है। साधक अपनी शारीरिक शक्ति के अनुरूप आसन लगा सकता है। बिछावन को अर्थात् चटाई आदि को भी आसन कहा गया है। सून, कुश, तृण एव ऊन का आसन हो सकता है। ऊन का आसन श्रेष्ठ माना जाता है। शरीर यन्त्र को साधना के अनुरूप बनाना ही आसन का उद्देश्य है। शरीर की पूरी क्षमता श्रेष्ठ योग साधना के लिए परमावश्यक है। योगासन और शारीरिक व्यायाम मे अन्तर है। शारीरिक व्यायाम केवल शरीर की पुष्टता तक ही सीमित है। परन्तु योगासन मे शारीरिक स्वास्थ्य, मन और वाणी की निर्मलता का साधन मात्र है।

सामान्यतया आसनो के तीन प्रकार है—१. **ऊर्ध्वासन**—खडे होकर किया जाता है। २. **निषीदन आसन**—बैठकर किया जाता है। ३. **शयन आसन**—लेटकर किया जाता है। इन आसनों के कुछ प्रकार ये भी है—ऊर्ध्वासिन—सम्पाद, एकपाद, कायोत्सर्ग निषीदन-पद्मासन, वीरासन, सुखासन, सिद्धासन, भद्रासन। शयन आसन—दण्डासन, धनुरासन, शवासन, मत्स्यासन, गर्भासन, भुजगासन।

शुभचन्द्राचार्य कृत ज्ञानार्णव मे पद्मासन और कायोत्सर्ग ये दो ही आसन ध्यान करने के लिए श्रेष्ठ बताए गये हैं।

कायोत्सर्गश्चपर्यङ्कः प्रशस्तं कैश्चिदीरितम् ।
देहिनावीर्यवैकल्यात् काल दोषेय सम्प्रति ।।
—ज्ञानार्णव प्र. 19, श्लोक 22

प्राणायाम—श्वास एव उच्छ्वास के साधने की क्रिया को प्राणायाम कहते हैं। शारीरिक सामर्थ्य बढाने के साथ-साथ ध्यान मे मानसिक एकाग्रता बढाने के लिए प्राणायाम किया जाता है। वास्तव मे शारीरिक वायु को (पच पवन या पच प्राण) साधना ही प्राणायाम है। प्राणायाम के सामान्यतया तीन भेद हैं—पूरक, रेचक, कुम्भक।

पूरक—नासिका छिद्र के द्वारा वायु को खीचकर शरीर मे भरना पूरक प्राणायाम कहलाता है। **रेचक**—इस खीची हुई पवन को धीरे-बाहर निकालना रेचक है। **कुम्भक**—पूरक पवन को नाभि के अन्दर स्थिर करना कुम्भक प्राणायाम है।

वायुमडल चार प्रकार का है—पृथ्वीमडल, जलमडल, वायुमडल एव अग्निमडल। इन चारों प्रकार के पवनों को भीतर लेने और बाहर फेकने मे जय, पराजय, लाभ, हानि सभव होते है। योगी इन पवनो को नियन्त्रित करके अनेक प्रकार के लौकिक एव पारलौकिक चमत्कारो का अनुभव करते हैं। नियन्त्रित प्राणवायु के साथ मन को हृदयकमल मे विराजित करने वाला योगी परमशान्त निर्विषयी और सहजानन्दी होता है।

प्राण के प्रकार—प्राण एक अखड शक्ति है उमे विभाजित नहीं किया जा सकता। फिर भी सुविधा और जीवन-सचालन की दृष्टि से उसके पाच भाग किये जाते है—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान।

प्राण—प्राण का मुख्य स्थान कठ नली है। यह श्वास पटल मे है। इसका कार्य अविराम गति है। श्वास-प्रश्वास एव भोजन नलिका से इसका सीधा सम्बन्ध है। **अपान**—नाभि से नीचे इसका स्थान है। यह मूलाधार से जुडी हुई शक्ति है। यह वायु स्वाभावत. अधोगामिनी है। यह प्राण वायु (अपान वायु) गुदा, आत एव पेट का नियन्त्रण करती है। यह ऊर्ध्वमुखी होने पर प्राण घातक हो सकती है। प्राय: यह ऊर्ध्व-मुखी होती नही है। **समान**—हृदय और नाभि के मध्य इसकी स्थिति है। पाचन क्रिया में यह सहायक है। **उदान**—इससे नेत्र, नासिका, कान

एव मस्तिष्क प्रभावित एव सक्रिय होते हैं। **ध्यान**—समस्त शरीर को प्रभावित करता है। अगो की सधिया, पेशिया और कोशिकाएं इससे क्रियाशील रहती हैं। **ध्यान रखे**—1 आसन के बाद प्राणायाम करे। 2 दूषित वातावरण मे प्राणायम न करे। 3. भोजन के बाद 3 घटे तक प्राणायाम न करे। 4 प्राणायाम प्रात: (6 से 7 बजे) तथा साय (5 से 6 बजे) करे। 5. प्राणायाम के लिए पद्मासन एव सिद्धासन उत्तम है। 6 प्राणायाम के पूर्व मलाशय एव मूत्राशय रिक्त हो। 7 तेज हवा मे प्राणायाम न करे। 8 प्राणायाम के समय शरीर शिथिल एव मुखाकृति सौम्य रहे। मन तनाव रहित रहे।

प्राणायाम की महत्ता के विषय मे 'ज्ञानार्णव' मे कहा गया है—

> **"जन्मशत जनितमग्रं, प्राणायामात् विलीयते पापम्।**
> **नाड़ी युगलस्यान्तं, यतेर्जिताक्षस्य वीरस्य ॥"**

अर्थात् प्राणायाम से सैकडो जन्मो के उग्र पाप दो घण्टो मे समाप्त हो जाते है। साधक जितेन्द्रिय बनता है।

प्रत्याहार—इन्द्रियो और मन को विषयो से पृथक् कर आत्मोन्मुख करने की प्रक्रिया है। मन को ऊपर उठाना अर्थात् मन का ऊर्ध्वीकरण करना (आज्ञाचक्र मे ले आना) प्रत्याहार की पूर्णता है। प्रत्याहार फलीभूत हो जाने पर योगी को ससार की कोई भी वस्तु प्रभावित नही कर पाती है। प्राणायाम के पश्चात् इस चिन्तन मे लीन होना होता है। प्राणायाम से शरीर और श्वास वश मे होती है। प्रत्याहार से मन निर्मल और निराकुल होकर आत्मा मे निमज्जित हो जाती है।

धारणा, ध्यान और समाधि—युवाचार्य महाप्रज्ञ अपनी पुस्तक 'जैन योग' मे कहते है—"जैन धर्म की साधना पद्धति का नाम मुक्ति-मार्ग था। उसके 3 अग है। सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान, सम्यक् चरित्र। महर्षि पतजलि के योग की तुलना मे इस रत्नत्रयी को जैन योग कहा जा सकता है। जैन साधना पद्धति मे अष्टाग योग के सभी अगो की व्यवस्था नही है। वहा प्राणायाम, धारणा और समाधि नही है। शेष अगों का भी प्रतिपादन नही है।"

प्रत्याहार के अन्तर्गत मन आत्मा मे लीन हो जाता है। इसमें स्थिरता और लीनता की दिशा में धारणा समर्थ है। धारणा से

ध्यान में निश्चलता आती है। आत्मोपलब्धि या सत्योपलब्धि के लिए सकल्प चाहिए और इस सकल्प की आवृत्ति सदा एकाग्र ध्यान में होती रहे, यह आवश्यक है। संकल्प का एक दिन हिमालय को हिला सकता है, जबकि अनिश्चितता की पूरी उम्र हिमालय का एक कण भी नही हिला सकती। सकल्प से ही ऊर्जा का प्रस्फुटन होता है। प्रचलित अर्थ मे ध्यान का अर्थ होता है किसी आवश्यक कार्य में तात्कालिक रूप से लगना-मन को एकाग्र करना। काम हो जाने पर निश्चिन्त हो जाना। फिर अपनी आलस्य और प्रमाद की स्थितियों में खो जाना। यह बात योगपरक ध्यान में नही होती है। वहां तो स्थिरता और लौटने की सकल्पात्मकता होती है। योग, ध्यान और समाधि ये शब्द प्राय समानार्थी भी माने गये है। ध्यान की चरम सीमा ही समाधि है। शरीर और मन की एकरूपता न हो तो ध्यान का पूर्ण स्वरूप नही बनता है। हाथ मे माला फेरी जा रही हो और मन मदिरालय मे हो तो क्या होगा? पहली स्थिति तो निश्चित रूप से असाध्य रोग की है। दूसरी स्थिति मे वर्तमान तो ठीक है पर आगे कभी भी खतरा हो सकता है। इन्द्रिया और विषय आकृष्ट कर सकते है। अत ध्यान मे शरीर और मन की एकरूपता आत्यावश्य है। सकल्प आवृत्ति और सातत्य चाहता है।

ध्यान चार प्रकार का बताया गया है—आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल। इनमे आर्त और रौद्र ध्यान कुध्यान है तथा धर्म और शुक्ल ध्यान शुभ ध्यान है। सामारिक व्यथाओ को दूर करने के लिए अथवा कामनाओ की पूर्ति के लिए तरह-तरह के सकल्प करना आर्तध्यान है और हिमा, झूठ, चोरी, कुशील आदि के सेवन मे आनन्दित होना रौद्र ध्यान है। इन्हे पाने के लिए तरह-तरह के कुचक्रो की कल्पना करना भी रौद्र ध्यान ही है। धार्मिक बातो का निरन्तर चिन्तन करना और नैतिक जीवन मूल्यो के प्रति निष्ठा रखना धर्म ध्यान है। शुक्ल ध्यान श्वेतवर्ण के समान परम निर्मल होता है और इसे अपनाने वाला साधक भी परम निर्मल चित्त का होता है।

णमोकार महामन्त्र का योग के साथ गहरा सम्बन्ध है। योग साधना के द्वारा हम शरीर और मन को सुस्थिर करके शान्त चित्त से पंच परमेष्ठी की आराधना कर सकते हैं। "ध्यान चेतना की वह

अवस्था है जो अपने आलम्बन के प्रति पूर्णतया एकाग्र होती है। एकाकी चिन्तन ध्यान है। चेतना के विराट आलोक मे चित्त विलीन हो जाता है।"

श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया से प्राणायाम का सम्बन्ध बहुत अधिक नही है, यह ध्यान मे रखना है। प्राणायाम की साधना के विभिन्न उपाय है। श्वास-प्रश्वास की क्रिया उनमे से एक है। प्राणायाम का अर्थ है प्राणो का सयम। भारतीय दार्शनिको के अनुसार सम्पूर्ण जगत् दो पदार्थों से निर्मित है। उनमे से एक है आकाश। यह आकाश एक सर्वानुस्यूत सत्ता है। प्रत्येक वस्तु के मूल मे आकाश है। यही आकाश वायु, पृथ्वी, जल आदि रूपो मे परिचित होता है। आकाश जब स्थूल तत्वों मे परिचित होता है। तभी हम अपनी इन्द्रियो से इसका अनुभव करते है। सृष्टि के आदि मे केवल एक आकाश तत्त्व रहता है यह आकाश किस शक्ति के प्रभाव से जगत् मे परिणत होता है—प्राण शक्ति से। जिस प्रकार इस प्रकट जगत् का कारण आकाश है उसी प्रकार प्राण शक्ति भी है।

प्राण का आध्यात्मिक रूप—योगियो के मतानुसार मेरुदड के भीतर इडा और पिगला नाम के दो स्नायविक शक्ति प्रवाह और मेरुदडस्थ मज्जा के बीच एक सुषुम्ना नाम की शून्य नली है। इस शून्य नली के सबसे नीचे कुण्डलिनी का आधारभूत पद्म अवस्थित है। वह त्रिकोणात्मक है। कुण्डलिनी शक्ति इस स्थान पर कुडलाकार रूप मे अवस्थित है जब यह कुडलिनी शक्ति जगती है, तब वह इस शून्य नली के भीतर से मार्ग बनाकर ऊपर उठने का प्रयत्न करती है और ज्यो-ज्यो वह एक-एक सोपान ऊपर उठती है, त्यो त्यो मन के स्तर पर स्तर खुलते चले जाते है और योगी को अनेक प्रकार की अलौकिक शक्तियो का साक्षात्कार होने लगता है। उनमे अनेक शक्तिया प्रवेश करने लगती हैं। जब कुडलिनी मस्तक पर चढ जाती है, तब योगी सम्पूर्ण रूप से शरीर और मन से पृथक् होकर अपनी आत्मा मे लीन हो जाता है। इस प्रकार आत्मा अपने मुक्त स्वभाव की उपलब्धि करती है।

कुडलिनी को जगा देना ही तत्त्व-ज्ञान, अनुभूति या आत्मानुभूति का एकमात्र उपाय है। कुडलिनी को जागृत करने के अनेक उपाय है। किसी की कुडलिनी भगवान के प्रति उत्कट प्रेम से ही जागृत होती है।

किसी को सिद्ध महापुरुषों की कृपा से, और किसी को सूक्ष्म ज्ञान विचार द्वारा। लोग जिसे अलौकिक शक्ति या ज्ञान कहते हैं, उसका जहां कुछ प्रकाश दृष्टिगोचर हो तो समझना चाहिए कि वहां कुछ परिमाण मे यह कुंडलिनी शक्ति सुषुम्ना के भीतर किसी तरह प्रवेश कर गई है। कभी-कभी अनजाने मे मानव से कुछ अद्भुत साधना हो जाती है और कुंडलिनी सुषुम्ना मे प्रवेश करती है।

उल्लिखित विवेचन अनेक विद्वानो और सन्तो के सुदीर्घ चिन्तन और अनुभव का सार है। इसमे स्पष्ट है कि हमारे अन्दर एक सर्व-नियन्त्रक सूक्ष्म शक्ति है जो प्रायः सुषुप्त अवस्था में रहती है। मानव के चैतन्य मे इसका जागृत होना परम आवश्यक है, परन्तु प्रायः सभी प्राणी इस शक्ति को समझ ही नही पाते हैं। अलग-अलग धर्मों ने इसे अलग-अलग नाम दिये हैं। ब्रह्मचर्य और मानसिक पवित्रता इसके जागरण के प्रमुख आधार हैं। **ब्रह्मचर्य सर्वोपरि है**—मानव शरीर में जितनी शक्तियां है उनमे ओज सबसे उत्कृष्ट कोटि की शक्ति है। यह ओज मस्तिष्क में संचित रहता है। यह ओज जिसके मस्तिष्क में जितने परिमाण में रहता है, वह मानव उतना ही अधिक बली, बुद्धिमानी और अध्यात्मयोगी होता है। एक व्यक्ति बहुत सुन्दर भाषा में बहुत सुन्दर भाव व्यक्त करता है परन्तु श्रोतागण आकृष्ट नही होते। दूसरा व्यक्ति न सुन्दर भाषा प्रयोग करता है और न सुन्दर भाव ही व्यक्त करता है, फिर भी लोग उसकी बात से मुग्ध हो जाते हैं। ऐसा क्यो? वास्तव में यह चमत्कार ओज शक्ति की सम्मोहकता का ही है। ओज तत्त्व चुप रहकर भी बोलता और मोहित करता है। यही मूल बात भीतरी नैतिकता और निष्ठा से प्रसूत वाणी की है, यह सब में नही होती है।

मानव अपनी सीमित ओज शक्ति को बढ़ा सकता है। मानव यदि अपनी काम क्रिया और दुर्व्यसनों मे नष्ट हो रही शक्ति को रोक ले और सहज अध्यात्म मूलक ओज में लग सके तो वह विश्व मे स्वयं का और दूसरों का अपार हित कर सकता है। मानव की शक्ति और आयु का सबसे अधिक क्षय कामलोलुपता के कारण होता है।

हमारे शरीर का सबसे नीचे वाला केन्द्र (मूलाधारक चक्र) शक्ति का नियामक एवं वितरक केन्द्र है। योगी इसीलिए इस पर विशेष

ध्यान देते हैं। ये सारी काम शक्ति को ओज धातु मे परिणत करते हैं। कामजयी स्त्रीपुरुष ही इस ओज धातु को मस्तिष्क मे संचित कर सकते हैं। यही कारण है कि समस्त देशो मे ब्रह्मचर्य को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। स्पष्ट है कि णमोकार मन्त्र के साधक मे ब्रह्मचार्य पालन भी पूर्ण शक्ति आवश्यक ही नही, अनिवार्य है। कुडलिनी जागरण और आध्यात्मिक साक्षात्कार ब्रह्मचर्य पालन पर आधृत है। मन्त्र शक्ति का प्रस्फुटन कामी व्यक्ति मे नही हो सकता।

योग साधना और मन्त्र साधना कामजयी व्यक्ति ही कर सकता है। योग मे कामजय सभव है और कामजयी को मन्त्रसिद्धि सभव है। काम समस्त अनर्थो का मूल है—

"विषयासक्तचित्तानां गुणः कोवा न नश्यति।
न वैदुष्य न मानुष्यं नाभिजात्य न सत्यवाक्॥

अर्थात् विषयी-कामी पुरुषो का कौन-सा गुण नष्ट नही होता? सभी गुण ध्वस्त हो जाते हैं। वैदुष्य, मानुष्य, आभिजात्य एव सत्यवाक् आदि सभी गुण नष्ट हो जाते है और गुण हीन व्यक्ति शव ही है। योग की सम्पूर्णता के लिए और उसकी मन्त्र सम्बद्धता के लिए शरीर की भीतरी रचना की जानकारी और उपयोगिता परमावश्यक है।

योग और शरीर चक्र—मनुष्य स्थूल शरीर तक ही सीमित नहीं है। वह सूक्ष्म शरीर एव स्वप्न शरीर आदि भेदो से आगे बढता हुआ समाधि की ओर गतिशील हो जाता है। शरीर के इन सभी रूपो को पाच शरीर भी कहा गया है। अन्नमय शरीर, प्राणमय शरीर, मनोमय शरीर, विज्ञानमय शरीर और आनन्दमय शरीर। इन शरीरो को कोश भी कहा गया है। इसी प्रकार औदारिक, वैक्रियक, तैजस, आहारक एव कार्माण के रूप मे जैन शास्त्रो मे शरीर भेदो का वर्णन है। इनसे परे आत्मा है। इन शरीरो की ऊपरी सतह पर ईथर शरीर (आकाश-वायु शरीर) है। ईथर के भण्डार स्थान शरीर चक्र कहलाते हैं। ये चक्र ईथर शरीर के ऊपर रहते है। प्रत्येक चक्ररूपी फूल मेरुदण्ड (रीढ) के पिछले भाग से अलग-अलग स्थान से प्रकट होता है। मेरुदण्ड से (पीठ की तरफ से) चक्र-रूपी पुष्प निकलकर ईथर शरीर की ऊपरी सतह पर खिलते है।

प्रमुख सात चक्र हैं—

चक्र	स्थान
1 मूलाधार चक्र	मेरुदंड के नीचे मूल में
2 स्वाधिष्ठान चक्र	गुप्तांग के ऊपर
3 मणिपुर चक्र	नाभिक के ऊपर
4 अनाहत चक्र	हृदय के ऊपर
5 विशुद्ध चक्र	कंठ में
6 आज्ञा चक्र	दोनो भौंहों के नीचे
7 सहस्त्रार चक्र	मस्तक के ऊपर

ये चक्र सदैव क्रियाशील रहते हैं और अपने मुख छिद्र में दिव्य-शक्ति (प्रणावायु) भरते रहते हैं। इस शक्ति के अभाव मे स्थूल शरीर जीवित नही रह सकता।

कुण्डलिनी-स्वरूप, क्रिया और शक्ति—यह मानव-मानवी के मेरुदण्ड के नीचे विद्यमान एक विकासशील शक्ति है। यही जीवन का मूलाधार है। यह हमारी रीढ के नीचे सुषुप्त अवस्था मे पड़ी रहती है। इसको ठीक समझने और उपयोग करने की शक्ति प्राय: मानव मे नहीं होती है। यह शक्ति लाभकारी भी है और नाशकारी भी। यदि पूर्ण जानकारी न हो तो इसे न छेडना ही उचित है। अनेक मनुष्यों में कभी-अद्‌भुत अतिमानवीय एव अति प्राकृतिक दैवी एव दानवी क्रियाएं देखी जाती है। यह सब अज्ञात रूप से जागी हुई कुण्डलिनी का ही कार्य है—आंशिक कार्य है। कुण्डलिनी-जागरण मे बहुत-सी बातें घटित होती हैं—जैसे सोते-सोते चलना, रात्रि में स्वप्न दर्शन, अतिनिद्रा एवं अनिद्रा। किसी समस्या का त्वरित समाधान मस्तिष्क मे बिजली की तरह कौंध जाना भी इसका ही चमत्कार है। मूलाधार मे शक्ति सग्रहीत होती है। वही से सम्पूर्ण चक्रों मे वितरित होती है। पृथ्वी और सूर्य के केन्द्रो से हम शक्ति-संग्रह करके मूलाधार में भरते है। इसी शक्ति को चक्रों की उत्तेजना के लिए वितरित भी करते हैं। कुण्डलिनी जागृत होने पर बर्छी की नोक की तरह ऊपर को चढ़ती हुई अन्ततः जीवात्मा में प्रवेश करती है और लोकोत्तर चैतन्य उत्पन्न करती है। कुण्डलिनी-जागरण के प्रभाव के सम्बन्ध में अनेक ऋषियो, सन्तों एवं

महर्षियों ने अपने अनुभव समय-समय पर प्रकट किये हैं। श्री रामकृष्ण परमहस कुण्डलिनी उत्थान का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि कुछ झुनझुनी-सी पांव से उठकर सिर तक जाती है। सिर मे पहुचने के पूर्व तक तो होश रहता है, पर उसके सिर मे पहुचने पर मूर्च्छा आ जाती है। आख, कान अपना कार्य नही करते। बोलना भी सभव नही होता। यहा एक विचित्र नि शब्दता एव समत्त्व की स्थिति उत्पन्न होती है। मैं और तू की स्थिति नही रहती। कुण्डलिनी जब तक गले में नही पहुचती, तब तक बोलना संभव है। जो झन-झन करती हुई शक्ति ऊपर चढती है, वह एक ही प्रकार की गति से ऊपर नही चढती। शास्त्रो मे उसके पाच प्रकार हैं। 1 चीटी के समान ऊपर चढना। 2 मेढक के समान दो-तीन छलाग जल्दी-जल्दी भरकर फिर बैठ जाना। 3 सर्प के समान वक्रगति से चलना। 4 पक्षी के समान ऊपर की ओर चलना। 5 बन्दर के समान छलाग भरकर सिर मे पहुचना। किसी ज्योति अथवा नाद का ध्यान करते-करते मन और प्राण उसमे लय हो जाए तो वह समाधि है। कुण्डलिनी-जागरण या चैतन्य स्फुरण ही योग का लक्ष्य होता है। कुण्डलिनी पूर्णतया जागृत होकर सहस्रार चक्र मे पहुच कर अनन्त समाधि मे परिणत हो जाती है।

ध्रुव सत्य तक पहुंचने के दो साधन हैं—एक है तर्क और दूसरा है अनुभव या साक्षात्कार। पदार्थमय जगत् भी स्थूल और सूक्ष्म के भेद से दो प्रकार का है। स्थूल जगत् को तो तर्क या विज्ञान द्वारा समझा जा सकता है, परन्तु सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थ की भीतरी परिस्थितिया तर्क द्वारा स्पष्ट नही होती। प्रयोग भी असफल होते हैं। इन्द्रिय, मन और बुद्धि की सीमा समाप्त हो जाती है। योगियो, सन्तो और ऋषियो का चिर साधनापरक अनुभव वहा काम करता है। पदार्थसत्ता से परे भावजगत् है। भावजगत के भी भीतर स्तर पर स्तर है। प्रकट मन, अर्धप्रकट मन और अप्रकट मन—ये तीन प्रमुख स्तर हमारे मन के हैं। मनोविज्ञान भी कही थक जाता है इन्हे समझने मे। सन्तों और योगियो का अनुभव कुछ ग्रन्थिया खोलता है, परन्तु सबका अनुभव एक-सा नही होता है अनुभूति की क्षमता भी सब की एक-सी नही होती। उस अनुभव का साधारणीकरण कैसे हो, यह भी एक समस्या रहेगी ही।

अनुभव और प्रामाणिकता या विश्वसनीयता का मेल होना ही चाहिए। अब तक का समस्त विवेचन जो अन्यान्य स्त्रोतों पर आधारित है, केवल मन्त्रसाधना में योग की भूमि को प्रस्तुत करने का एक प्रयत्न है। योग साधना स्वयं में एक सिद्धि है, किन्तु यहां हमने योग को मन्त्राराधना या मन्त्रसाधना का एक सशक्त एव अनिवार्य साधन माना है। हम उक्त योग स्वरूप, सिद्धान्त या प्रयोग पद्धति को माने या किसी अन्य स्त्रोत की बात को माने यह निर्विकार है कि मन, वाणी एवं कर्म-कायगत सम्पूर्ण नियन्त्रण के अभाव में महामन्त्र तो क्या, साधारण सासारिक जादू टोना भी सिद्ध न होगा !

योग साधना, ध्यान और जाप से हम अपनी आत्मा मे पवित्रता लाना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि हम महामन्त्र से साक्षात्कार कर सके। इसी के निए हम योग साधता रूपी साधन को अपनाते हैं। इससे हमारे शरीर मे शक्ति, वाणी मे संयम और मन में दृढ़ता और अचचलता आती है। शारीरिक स्वस्थता और मनगत निश्चलता से हम मन्त्राराधना मे लगेंगे तो अवश्य ही वीतराग अवस्था तक पहुंच सकेंगे। केवलज्ञान का साक्षात्कार कर सकेंगे—अपनी आत्मा की विशुद्धवस्था पा सकेंगे। अन्तिम सत्य एक ही होता है और उसकी स्थिति भी एक ही होती है, उसके पाने के प्रकार और रास्ते अलग-अलग हो सकते हैं। उत्कृष्ट योगी में लक्ष्य की महानता होती है, रास्तों का आग्रह नही।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है--योग का अर्थ है जुडना। स्वय के द्वारा, स्वयं के लिए, स्वय मे (स्वात्मा में) जुडना ही योग है। अयोग या कुयोग (सासारिकता) से हटना और अपने मूल मे परम शान्तभाव से रहना योग है। वस्तुत: मन, वाणी और कर्म का समन्वय, नियन्त्रण एव उदात्तीकरण भी योग है। मन्त्रों के आराधन के लिए यह आधार शिला है। योगपूत व्यक्ति सहज ही मन्त्र से साक्षात्कार कर सकता है, जबकि योगहीन असयमी एवं अवसरवादी व्यक्ति सौ वर्षों के तप और योग से शतांश भी मन्त्र-सान्निध्य प्राप्त नहीं करेगा। ससार के तुच्छ कार्यों की सफलता के लिए भी लोग जी-जान से एक तान होकर जुट जाते हैं—यह स्वय मे योग का भौतिक लघु रूप है। तब मन्त्रों के

सान्निध्य एव आध्यात्मिक उन्नयन के लिए योग-साधना की महनीयता स्वत सिद्ध है।

"योग समाप्त होते है, वही योग का आदि बिन्दु है। योग का मूल स्रोत अयोग का अर्थ है केवल आत्मा। योग का अर्थ है आत्मा के साथ सम्बन्ध की स्थापना। अयोग अयोग होता है, योग-योग होता है, वह न जैन होता है, न बौद्ध और न पातजल।" योग विज्ञान है और है प्रयोगात्मक मनोविज्ञान। जीवन को अमर सार्थकता योगमय नियमित कार्यक्रम ही दे सकता है।

णमोकार महामन्त्र का प्रत्येक अक्षर अक्षय शक्तियो का भण्डार है। इनके उदघाटन और तादात्म्य की स्थिति योग द्वारा ही जीव मे सभव है। अत स्पष्ट है कि योग-मार्ग से साक्षात्कृत मन्त्र स्वत जीव मे या साधक मे सहज ही विश्वजनीन समत्व एव शान्ति का परात्पर उदघोष करता है। दृष्टि और दृष्टिकोण का यही सर्वांगीण विस्तार मन्त्रो का मर्म है। शत प्रतिशत लक्ष्यात्मकता योग का प्राण है। □

महामन्त्र णमोकार अर्थ, व्याख्या (पदक्रमानुसार)

विश्व के प्रत्येक धर्म मे चित्त की निर्मलता और तदनुसार आचरण की विशुद्धता को स्वीकार किया गया। इसके लिए सभी धर्मों ने एक अत्यन्त सक्षिप्त पूर्ण एव परम प्रभावकारी साधन के रूप मे मन्त्रो को अपनाया है। मन्त्रो मे भी सर्वत्र एक महामन्त्र होता ही है। वैदिक परम्परा मे गायत्री महामन्त्र, बौद्ध परम्परा मे त्रिमरण महामन्त्र, ईसाई मुसलमान और सिक्ख धर्म मे भी इबादत और ईशनाम स्मरण को महामन्त्रो की सज्ञा दी गयी है। जैन धर्म इस परम्परा का अपवाद नही है, अपितु इस धर्म मे तो 'णमोकार महामन्त्र' को अनाद्यनन्त माना गया है।

मूल महामन्त्र

णमो अरिहंताण, णमो सिद्धाण, णमो आइरियाण ।
णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्वसाहूण।।

अरिहन्तो को नमस्कार हो सिद्धो को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो उपाध्यायो को नमस्कार हो, लोक के समस्त साधुओ को नमस्कार हो।

मन्त्र के प्रथम पद मे अरिहन्त परमेष्ठी को नमस्कार किया गया है। 'अरि' अर्थात् शत्रुओ को हन्त अर्थात् नष्ट करने वाले अरिहन्तो को नमस्कार हो। यह महामन्त्र अपनी मूल प्रकृति के अनुसार नमन और विनय गुण की आधार शिला पर स्थित है। विनय और नमन के मूल मे श्रद्धा, गुणग्राहकता और अहिसक दृष्टि के ठोस तत्त्व विद्यमान होने पर ही उसकी सार्थकता सिद्ध होती है। आशय यह है कि अरिहन्त परमेष्ठी आत्म-विकास के सशक्ततम विरोधी मोहनीय कर्म का क्षय करके ही अरिहन्त बनते हैं। अन्य तीन घातिया कर्म (ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय) तो अस्तित्ववान होकर भी निर्जीव होकर

अकिंचित्कर हो जाते हैं। अत स्पष्ट है कि मानव के आध्यात्मिक विकास मे सबसे बडी बाधा है सासारिक रिश्तो में घोर रागात्मकता, सासारिक सुख-सम्पत्ति के प्रति अटूट लगाव।

यह आसक्ति यह लगाव एक ऐसी मदिरा है जिसमें मानव का समस्त विवेक पूर्णतया नष्ट हो जाता है। इस एक अवगुण के आ जाने पर अन्य अवगुण तो अनायास आ ही जाते है। इसी प्रकार मन से आसक्ति हट जाने पर सारे विषय भोग स्वत सूखकर समाप्त हो जाते हैं। णमोकार मन्त्र के द्वारा भक्त की उत्कट चैतन्य शक्ति (आभामडल) निर्णायक एव निर्माणकारी दिशा मे परिवर्तित होती है। ज्यो-ज्यो मन्त्र भक्त के चैतन्य मे उतरता जाता है त्यो-त्यो उसका सब कुछ उदीप्तीकृत होता जाता है।

"मन्त्र आभामण्डल को बदलने की आमूल प्रक्रिया है। आपके आस-पास की स्पेस और इलेक्ट्रो डायनेमिक फील्ड बदलने की प्रक्रिया है।[1]

× × ×

अरिहन्त मजिल है, जिसके आगे फिर कोई यात्रा नही है। कुछ करने को न बचा जहा, कुछ पाने को न बचा जहा, कुछ छोडने को भी न बचा जहा, सब समाप्त हो गया। जहा शुद्ध अस्तित्व रह गया, प्योर एक्जिस्टेंस जहा रह गया, जहा गन्ध मात्र रह गया, जहा होना मात्र रह गया, उसे कहते है अरिहन्त।

× × ×

लेकिन अरिहन्त शब्द है निगेटिव—नकारात्मक। उसका अर्थ है जिनके शत्रु समाप्त हो गये। यह 'पॉजिटिव' नही है, विधायक नही है। असल मे इस जगत् मे जो श्रेष्ठतम अवस्था है, उसको निषेध से ही प्रकट किया जा सकता है।" है ससीम है, छोटा है, नहीं असीम है बडा है। नहीं बहुत विराट है। इसीलिए परमशिखर पर रखा है अरिहन्त को।

---

1. 'महावीर वाणी'—पृ० 41-42—ले० श्री रजनीश

धवला टीका प्रथम भाग मे अरिहन्त शब्द की व्याख्या 'रज' अर्थात् रजोहनन शब्द से की गयी है।[1] इसका आशय यह है कि ज्ञानावरणी एव दर्शनावरणी कर्म मानव के त्रिलोक एव त्रिकालजीवी विषय बोध के अनुभावक्ता ज्ञान और दर्शन को प्रतिबन्धित कर देते हैं। जैसे धूल भर जाने पर दृष्टि मे धुध छा जाती है उसी प्रकार ये दोनो कर्म मानव का विकास रोक देते हैं। अत इन्हे नष्ट करने के कारण ही अरिहन्त कहलाते हैं। शेष कर्म तो फिर स्वत नष्ट होते ही हैं। इसी प्रकार रहस्य अभाव के साथ भी अरिहन्त शब्द का अर्थ किया गया है। रहस्य भाव का अर्थ है अन्तराय कर्म। शास्त्रानुसार अन्तरायकर्म का नाश शेष तीन घातिया कर्मों के अविनाभावी नाश का कारण है। ये व्याख्याए आचार्यों ने आपेक्षिक दृष्टि से की हैं। सातिशय पूजा अरिहन्तो की होती है इस दृष्टि से भी अरिहन्तो को नमस्कार किया जाना सम्भव है। भगवान के गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण इन पच कल्याणको मे देवो द्वारा की गयी पूजाए मानवो द्वारा की गयी पूजाओ की तुलना मे अपना वैशिष्टय रखती हैं। निश्चय नय की दृष्टि से सिद्ध अरिहन्तो से अधिक पूज्य हैं क्योकि वे अष्ट कर्मों को नष्ट करके मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं। परन्तु अरिहन्तो से जीवमात्र को जो प्रत्यक्ष दर्शन एव उपदेश का लाभ होता है वह बहुत महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक सत्य है। अत इसी दृष्टि से अरिहन्तो को महामन्त्र मे प्राथमिकता दी गयी है।

महामन्त्र मे पच परमेष्ठी को समान रूप से नमस्कार किया गया है किसी प्रकार का भेद रखकर न्यूनाधिकता से नमन नही किया गया है। तथापि मथन विवक्षा मे तो क्रम को अपनाना अनिवार्य होता ही है। इसी प्रकार यह एक प्रकार से स्वयम्भू मन्त्र है—अनादि—अनन्त मन्त्र है अत इसकी महानता मे शका का कोई महत्त्व नहीं है। हां, इतना जरूर है कि मानव-मन पद-क्रम के अनुसार अर्थ और महत्ता को घटित करता ही है, वह तर्क का सहारा भी लेता ही है। अरिहन्त

1 रजो हननाद्वा अरिहन्ता। ज्ञानदृगावरणानि रजासीव।
रहस्यभावाद्वा अरिहन्ता। रहस्यमन्तराय। तस्य शेष घातित्रियविनाशाविनाभाविनो भ्रष्ट बीजवन्नि शक्तीकृता घातिकर्मणो हननादरिहन्ता।'
'अतिशय पूजार्हत्वाद् वा अरिहन्ता''—धवला टीका प्रथम भाग 42

परमेष्ठी की गरिमा प्राथमिकता और अतिशयता सिद्ध करने मे भी ऐसा हुआ भी है। इस पर दृष्टिपात आवश्यक है।

"जिसके आदि मे अकार है, अन्त मे हकार है और मध्य मे बिन्दु सहित रेफ है वही (अर्ह) उत्कृष्ट तत्त्व है। इसे जानने वाला ही तत्वज्ञ है।"[1] अरिहन्त परमेष्ठी वास्तव मे एक लोक-परलोक के सयोजक सेतु परमेष्ठी है। ये स्वय परिपूर्ण हैं, प्रेरक हैं और हैं जीवन्मुक्त। अरिहन्त परमेष्ठी स्वय तप आराधना एव परम सयम का जीवन व्यतीत करते है अत सहज ही भक्त का उनसे तादात्म्य-सा हो जाता है और अधिकाधिक श्रद्धा उमडती है। अरिहन्त जीव दया और जीवकल्याण मे जीवन का बहुभाग व्यतीत करते हैं। वास्तव मे णमोकार मन्त्र का प्रथम पद ही उसकी आत्मा है—उसका प्राणाधार है। अरिहन्त विशेष रूप से वन्दनीय इसलिए है क्योंकि वे प्राणी मात्र की विशुद्ध अवस्था के पारखी है और इसी आधार पर 'आत्मवत सर्वभूतेषु' तथा 'भित्ती मे सब्बभूदेष' उनकी दिनचर्या मे हस्तामलकवत झलकते हैं—दिखते है। अरिहन्त की विराटता और जीव मात्र से निकटता इतनी अधिक है कि आज केवल अर्हत मे ही पच परमेष्ठी के गर्भित कर लने की बात जोर पकडती जा रही है। अर्हत सम्प्रदाय की वर्धमान लोकप्रियता और देश-विदेश मे उसकी नवचैतन्यमयी दृष्टि का प्रभाव बढता ही जा रहा है। अर्हत नाद, अर्थ, आसन ध्यान, मगल, जप आदि के स्तर पर भी पूर्णतया खरे उतर चुके है। अर्हत मे अ स ल कर सम्पूर्ण मूलभूत का समाहार हो जाता है। अत समस्त मन्त्र मातृकाओ के अर्हत मे गर्भित होने से इसकी स्वय मे पूर्ण मन्त्रात्मकता सिद्ध होती है। अरिहन्त ही मूलत तीर्थंकर होते हैं। तीर्थंकरो मे अतिशय और धर्मतीर्थ प्रवर्तन की अतिरिक्त विशेषता पायी जाती है अत वे अरिहन्त तीर्थंकर कहलाते है। "राग द्वेष और मोह रूप त्रिपुर को नष्ट करने के कारण त्रिपुरारि, ससार मे शान्ति स्थापित करने के कारण शकर, नेत्रद्वय और केवलज्ञान से ससार के समस्त पदार्थो को देखने के कारण त्रिनेत्र एव कर्म विचार को जीतने के कारण कामारि के रूप मे अर्हत् परमेष्ठी मान्य होते हैं।"*

---

* मगल मन्त्र णमोकार एक अनुचिन्तन—पृ० 41

पंचाध्यायीकार ने अरिहन्त की सबसे बड़ी विशेषता उनके लोकोपकारी एवं धर्मोपदेशक होने में मानी है।

'दिव्यौदारिक देहस्थो धौतघाति चतुष्टय ।
ज्ञानदृग्वीय सौख्याढ्‌ सोऽहन्‌ धर्मोपदेशक ॥"[1]

महामन्त्र है इसे प्रमुख रूप से आध्यात्मिक जिजीविषा के लिए माना जाता है। इसमे चमत्कार को कोई स्थान नही है। जो णमोकार मन्त्र की साधना नही कर सकते उ हे चमत्कार की भाषा ही समझ मे आती है। साधना करने के बाद जब अनुभति हो जाती है तो मनुष्य को अन्दर मे ही शक्ति का अनुभव होने लगता है। चमत्कार अरिहन्त परम्परा के विरुद्ध है क्योकि अरिहन्त की परम्परा मे धारणा के द्वारा सप्रविजयस्वत हो जाती है। धारणा और ध्यान इनका मूल कारण है।[2] अरिहताण म दो प्रकार की साधना की जा ी है। एक अ र—कठ से नाभि की ओर और फिर ह—शरू करो—क ण्ठ से नाभि तक जाओ। फिर बाद मे सुषम्ना के बीच तक। कण्ठ से नाभि तक फिर नाभि से सुषुम्ना तक शद्ध करके मस्तिष्क तक पहुचना फिर इस शरीर मे यात्रा करना यह जो तरीका है यही सिद्धि का रास्ता है। इसम चमत्कार जैसी कोई बात नही है।

मन्त्र की प्रभाव प्रक्रिया—

जिस प्रकार औषध का हमारे शरीर पर रासायनिक प्रभाव पडता है उसी प्रकार मन्त्र का भी पडता है। म त्र का प्रभाव शरीर को पार कर चैतन्यशक्ति पर भी पडता है। धीरे धीरे हम रे मन को कसने वाली दबोचने वाली प्रवत्तिया क्षीण होकर समाप्त हो जाती है। मन्त्र का प्रत्येक अक्षर चिन्तन मृदु उच्चारण एव दीर्घ उच्चारणो के आधार पर प्रभाव क्रम पैदा करता है।

हमारी चेतना के प्रमुख तीन प्रवाह क द्र हैं— इडा पिगला और सुषुम्ना। वास्तव मे ये तीन श्वास स्वर है। इडा बाया स्वर है पिगला दाया स्वर है और सुषुम्ना मध्य स्वर है। बाया और दाया स्वर ही

---

1 पञ्चाध्यायी अ० 2

2 तीर्थंकर दिस० 1980—पृ० 10C—मनि सुशील कुमार जी

प्राय: सक्रिय रहता है। ये दोनों सांसारिक जिजीविषा के वाहक हैं और हमारे चित्त को अशान्त रखते है जब मध्य स्वर अर्थात् सुषुम्ना गतिशील हो उठता है तो मन मे स्थिरता और शान्ति आती है। वास्तव में यहीं से अर्थात् सुषुम्ना के जागरण से हमारी आध्यात्मिक यात्रा का शुभारम्भ होता है। सुषुम्ना के जागरण और सक्रियता मे 'णमो अरिहंताणं' के मनन और जपन का अनुपम योग होता है। वास्तव में अर्हंत के पूर्ण ध्यान का अर्थ है स्वय से साक्षात्कार अर्थात् अपनी परम +आत्मा (परमात्मा) दशा मे प्रस्थान। इस पद की एतादृश अनेक विशेषनाओ की विस्तृत एव प्रामाणिक चर्चा आगे एक स्वतन्त्र अध्याय मे निर्धारित है।

णमो सिद्धाणं —

सिद्धो को नमस्कार हो मोक्ष रूपी साध्य की सिद्धि अर्थात् प्राप्ति करने वाले सिद्ध परमेष्ठियो को नमस्कार हो। जिन सिद्धो ने अपने शुक्ल ध्यान की अग्नि द्वारा समस्त—अष्टकर्म रूपी ईंधन को भस्म कर दिया है और जो अशरीरी हो गये हैं, उन सिद्धो को नमस्कार हो। जिनका वर्ण तप्त स्वर्ण (कुन्दन) के समान लाल हो गया है और जो सिद्ध शिला के अधिकारी हैं, उन सिद्धो को नमस्कार हो। पुनर्जन्म और जरा मरण आदि के बन्धनो को सर्वथा काटकर जो सदा के लिए बन्धन मुक्त हो गये हैं ऐसे उज्ज्वलसिद्ध परमेष्ठियो को नमस्कार हो।[1] आत्मा की पूर्ण विशुद्ध अवस्था सिद्ध पर्याय मे ही प्राप्त होती है। आत्मा के अष्ट गुणो की पूर्णता से युक्त, कृतकृत्य एव त्रैलोक्य के शिखर पर विराजमान एव वन्द्य सिद्ध परमेष्ठियो का, नमन इस पद मे किया गया है। नमनकर्ता स्वय मे उक्त गुणो को कभी ला सकेगा, या कम-से-कम आंशिक रूप से ही लाभान्वित हो सकेगा, इसी भावना से वह पूर्ण-निर्विकार परमेष्ठी को परम विनीत भाव से नमन कर रहा है। सिद्ध परमेष्ठी के प्रति नमन आत्मा की पूर्ण विद्धता के प्रति नमन है। मानव विकल्पो से जन्म-जन्मान्तर से जूझता चला आ रहा है। वह

---

1 "अट्ठविह कम्म वियला, सीदी भूदा णिर जणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा, लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।।"
गोम्मटसार जीवनकाण्ड गाथा-68

सकल्पात्मक निर्विकल्पता को प्राप्त करना चाहता है। यह सिद्ध परमेष्ठी से—उनके दर्शन, गुणानुवाद एव पूर्णनमन से ही प्राप्त हो सकती है। निर्विकार और परम शान्त अवस्था प्राप्त करने के लिए णमो सिद्धाण का ध्यान एव जाप अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। णमो अरिहत।र्ण मे श्वेत रग के साथ तीन भाव से ध्यान किया जाता है। इससे हमारी मानसिक स्वच्छता और आन्तरिक शक्तियो का उन्नयन होता है। णमो सिद्धाण सिद्ध परमेष्ठी के ध्यान और जाप के समय,लाल रग के साथ हम सहज ही जुड जाते हैं। सिद्ध परमेष्ठी के नमन के समय हमारे मानस पटल पर वह चित्र उभरना चाहिए जबकि सिद्ध परमेष्ठी अष्टकर्मों का दहन कर निर्मल रक्तवर्ण कुन्दन की भाति देदीप्यमान हो उठते हैं। हमारे शरीर मे रक्त की कमी हो अथवा रक्त मे दोष आ गया हो तो णमो सिद्धाण का पचाक्षरी जाप करना वांछनीय है। 'णमो सिद्धाण' का ध्यान दर्शन केन्द्र मे रक्त वर्ण के साथ किया जाता है। बाल सूर्य जैसा लाल वर्ण। दर्शन केन्द्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। लाल वर्ण हमारी आन्तरिक दृष्टि को जागृत करने वाला है। इस रग की यही विशेषता है कि वह सक्रियता पैदा करता है। कभी सुस्ती या आलस्य का अनुभव हो, जडता आ जाए तो दर्शन केन्द्र मे दस मिनट तक लाल रग का ध्यान करे। ऐसा अनुभव होगा कि स्फूर्ति आ गयी है।"[1] विशुद्ध दृष्टि से सिद्ध परमेष्ठी ही पंचपरमेष्ठियों मे श्रेष्ठतम हैं और प्रथम पद के अधिकारी हैं। प्रस्तुत मन्त्र मे विवक्षा भेद से या ससारी जीवो के प्रत्यक्ष और सीधे लाभ तथा उपदेश प्राप्ति आदि की दृष्टि से ही अरिहन्त परमेष्ठी का प्रथम स्मरण किया गया है। स्पष्ट है कि अरिहन्तो को भी अन्तत सिद्ध अवस्था प्राप्त करना ही है। सिद्ध या सिद्धावस्था तो अरिहन्तो द्वारा भी वन्दय है। वास्तव में सिद्ध परमेष्ठी पूर्ववर्ती चार परमेष्ठियो की अवस्थाए पार कर चुके है और अन्य परमेष्ठियो से गुणात्मक धरातल पर आगे है। अन्य परमेष्ठियो को अभी सिद्ध अवस्था प्राप्त करना है। अत सिद्ध परमेष्ठी मात्र का वन्दन नमन, चिन्तन, स्मरण पचपरमेष्ठी—वन्दन ही है। फिर भी पूरे मन्त्र के जप, ध्यान एव भाष्य अवश्य ही विशेष फलदायी

---

1 "एसो पच णमोकारो"—प० 78 युवाचार्य महाप्रज्ञ

होगा। अत: सिद्ध परमेष्ठी की सर्वोपरि महत्ता स्वयसिद्ध है। आचार्य हेमचन्द्र का महामन्त्र के प्रति यह भाव वास्तव मे सिद्ध सन्दर्भ मे ध्यातव्य है—

"हरइ दुहं, कुणइ सुहं, जणइ जसं सोमए भव समुद्दं।
इह लाह परलोकय-सुहाण, मूलं णमुक्कारो॥"

अर्थात् महामन्त्र णमोकार दुखहर्ता एव सुखदाता है। यश उत्पन्न करता है, भव समुद्र को सुखाता है। यह मन्त्र इस लोक एव परलोक मे सुखो का मूल है।

सिद्धो के सम्बन्ध मे एक बात और ध्यान देने की है—सामान्यतया कुल सात रग माने जाते है—लाल, नीला, पीला, नारगी, हरा, नीलाबैगनी, बैगनी (वायलेट)। इनमे कुल तीन ही मूल रग हैं—लाल, नीला, पीला। बाकी रग इन रगों के मिश्रण से बनते हैं। आश्चर्य यह है कि सफेद और काला रग भी मिश्रण से बनता है, मौलिक नही हैं। मिश्रण से तो फिर सहस्रो रग बनते हैं। उक्त तीन मूल रगो मे भी लाल रग ही प्रमुख है। वही ऊष्मा और जीवन का रग है। यही सिद्ध परमेष्ठी का रग है। अत. इस स्तर पर भी सिद्धो की सर्वोपरि महत्ता प्रकट होती है।[1]

णमो आइरियाणं—

आचार्य परमेष्ठियो को नमस्कार हो। जिनके मन, वचन और आचरण मे एकरूपता है, वे ही विश्व-जीवो के उद्धारक—पथ-प्रदर्शक आचार्य है। ये आचार्य स्वय के आचरण मे ज्ञान को परीक्षित एव पवित्र करके ही प्राणियो को सयम, तप एव ज्ञान का उपदेश देते हैं। वास्तव मे आचार्य परमेष्ठी अपने आचरण द्वारा ही प्रमुख रूप से जीवो मे स्थायी आध्यात्मिक गुणो का सचार करते हैं। आचार्य परमेष्ठी के निजी आचरण द्वारा ही उनके निर्मल विचार प्रकट होते है। ये उपदेश

---

1 'णमो नमस्कार पचविधमाचार चरन्ति चारयन्तीत्याचार्या।"
धवला टीका प्रथम—पृ० 48

का सहारा कम ही लेते हैं। ये आचार्य परमेष्ठी समदृष्टि, परमज्ञानी, आत्मनिर्भर निर्लोभी, निर्लिप्त एव गुण ग्राहक भी हैं। ये जीवन के अनुशास्ता है। ये आचारी एव आचार्य के भव्य सगम तीर्थ हैं। इनमे आचार और ज्ञान का श्रेष्ठ सम्मिलन हुआ है। यहा आचार्य परमेष्ठी के सम्बन्ध मे विचार करते समय यह विवेक दृष्टि परमावश्यक है कि इनका प्रमुख व्यक्तित्व आचार प्रधान है—प्रयोगात्मक है। ये दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य इन पाच आचार्यों का स्वय पालन करते हैं और सघ के सभी साधुओ को भी उक्त आचरण मे लीन रखते हैं। ये मेरु के समान दृढ और पृथ्वी के समान क्षमाशील होते हैं। (आचार्य परमेष्ठी के) 36 मूलगुण होते हैं—12 तप 10 धर्म, 5 आचार, 6 आवश्यक और 3 गुप्ति। ये आचार्य परमेष्ठी श्रावको को दीक्षा देते हैं—व्रतो में लगाते हैं। दोषी श्रावको या साधुओ की प्रायश्चित द्वारा शुद्धि भी कराते हैं। आचार्य स्वर्ण के समान निर्मल, दीप ज्योति के समान ज्योतिर्मय हैं। उनका पीतवर्ण जीवन की पुष्टि और शुद्धता का द्योतक है।

तीर्थकर जिस धर्म मार्ग का प्रवर्तन करते हैं और चार तीर्थों की—श्रावक, श्राविका, साधु-साध्वी—स्थापना करते हैं, उन्हे विधिवत् चलाते रहने का प्रशासनिक उत्तरदायित्व, आचार्य परमेष्ठी का होता है।

आचार्य परमेष्ठी पच परमेष्ठी के ठीक मध्य मे विराजमान है। अरिहन्तो और सिद्धो की धर्म परम्परा युगानुरूप विवेचन करने-कराने मे ही आचार्य परमेष्ठी की महत्ता है। स्पष्ट है कि आचार्य परमेष्ठी अरिहन्तो और सिद्धो से सब कुछ ग्रहण करते हैं तो दूसरी ओर उपाध्यायो और साधु परमेष्ठियो मे अपना चारित्रिक एव अनुशासनात्मक सन्देश भरते रहते हैं। आगे चलकर आचार्य को साधु या मुनि वेष धारण करके ही मुक्ति प्राप्त करना है। अत इस दृष्टि से साधु का स्थान ऊचा ही है। बस बात इतनी ही है कि साधु अवस्था तक पहुचने की स्थिति का निर्माण, आचार्य परमेष्ठी द्वारा ही होता है अत आधारशिला के रूप मे आचार्य परमेष्ठी की महत्ता को स्वीकार करना ही होगा। किसी भवन या दुर्ग के लिए नीव की महत्ता किसी से छिपी नहीं है। "आचार्य वे हैं जिनका ज्ञानयुक्त आचरण स्वय को श्रेष्ठ

बनाने के साथ अन्यो के लिए प्रेरणा, आदर्श और अनुकरण का विषय बनता है। आचार्य का निर्णय चतुर्विध सघ करता है और तदनुसार उन्हे अपने नेतृत्व मे साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका—चारो के ज्ञान-चरित्र के उत्तरोत्तर विकास मे सहायता करनी पड़ती है।"[1] इस प्रकार आचार्य परमेष्ठी वीतराग भगवान के गुरुकुल के सचालक होते हैं और चारो तीर्थों के नेता होते है।

णमो उवज्झायाणं—

उपाध्येय परमेष्ठियो को नमस्कार हो। आचार्य परमेष्ठी आचार (चारित्र्य) पालन और अनुशासन पक्षो पर प्रमुख रूप से ध्यान देते हैं। इन्ही पक्षो से सम्बन्धित विषयो का अध्यापन (उपदेश) भी आवश्यकतानुसार देते हैं। उपाध्याय परमेष्ठी मे आचार्य के पूर्वोक्त प्राय. सभी गुण होते हैं। इनका प्रमुख कार्य मुनियों को द्वादशाङ्ग वाणी के सभी पक्षों का विशद एवं तात्त्विक अध्ययन कराना है। उप अर्थात् जिनके समीप बैठकर मुनिगण अध्ययन करते हैं वे उपाध्याय कहलाते हैं। अथवा ज्ञान की सर्वोच्च उपाधि 'उपाध्याय' से जो विभूषित हो वे उपाध्याय कहलाते है। "जो मुनि परमागम का अभ्यास करके मोक्ष मार्ग मे स्थित हैं तथा मोक्ष के इच्छुक मुनियो को उपदेश देते हैं, उन मुनीश्वरो को उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। उपाध्याय ही जैनागम के ज्ञाता होने के कारण मुनिसघ मे पठन-पाठन के अधिकारी होते हैं···ग्यारह अग और चौदह पूर्व के पाठी, ज्ञान, ध्यान मे लीन, परम निर्ग्रन्थ श्री उपाध्याय परमेष्ठी को हमारा नमस्कार हो।"[2] सम्यग्ज्ञान की समस्त उच्चता, गाम्भीर्य और विस्तार के पूर्ण ज्ञाता और विवेचनकर्ता उपाध्याय होते हैं। उपाध्याय परमेष्ठी श्रुतज्ञान के अधिष्ठाता होने के साथ-साथ व्याख्या और विवेचन की नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा से भी ममलकृत होते हैं। उनका समस्त जीवन ज्ञानार्जन एव ज्ञानदानार्थ समर्पित रहता है। उनमे किसी प्रकार का स्वार्थ, हीनता ग्रन्थि अथवा व्यापार बुद्धि का सर्वथा अभाव रहता है। वे बाहर और भीतर से एक से होते है। उन्हे सामारिकता से कोई

---

1 'सर्वधर्म सार महामन्त्र नवकार'—पृ० 53, कांति ऋषीजी

2 'मगलमन्त्र णमोकार एक चिन्तन'—पृ० 48, डॉ० नेमिचन्द्र जैन

लगाव नही होता है। उनका ससार होता ही नही है अत उनकी समस्त चित्तवृत्तिया स्वाध्याय और नये-नये चिन्तन मे लगी रहती है। आज का अध्यापक, प्राध्यापक एव प्राचार्य प्राय यान्त्रिक चेतना से अनुचालित होता है और व्यापार बुद्धि से ही पाठ्यक्रममूलक अध्यापन करता है। उसका अपने विषय के प्रति प्राय तादात्म्य या रागात्मक सम्बन्ध नही रहता है। वह केवल 'अनिवार्य कार्य भार' तक ही सीमित रहता है। अपवाद स्वरूप कतिपय विद्वान ऐसे भी होते हैं जो अद्भुत प्रतिभा के धनी होते हैं, निरन्तर स्वाध्याय और अनुसधान करते रहते हैं। परन्तु वे गृहस्थ होते हैं एव ससार से बद्ध होते हैं अत उनका अधिकाश समय ज्ञान-साधना मे व्यतीत नहीं होता है। उनकी प्रतिभा का पूर्ण विकास सम्भव नही हो पाता है। उपाध्याय विशुद्ध गुरु होते हैं। उनमे ज्ञान और चारित्र्य की अगाध गुरुता रहती है। वे परम निर्लोभी होते हैं। कभी व्यापार भाव से विद्यादान नही करते हैं। ऐसे परम गुरु का शिष्य होना किसी का भी अहोभाग्य हो सकता है। गुरु को किसी भी स्तर पर लघु नही होना चाहिए। उपाध्याय परमेष्ठी उस विद्या और उस ज्ञान को देते है जिससे समस्त सासारिकता अनायास प्राप्त होती है और शिष्य उसे त्यागता हुआ आत्मा के परमधाम मोक्ष मे दत्तचित्त होता चला जाता है। महाकवि भर्तृहरि ने विद्या की विशेषता के विषय मे बहुत सटीक कहा है—

> **"विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।**
> **पात्रत्वात् धनमाप्नोति, धनाति धर्मं तत सुखम्॥"**
> **—नीतिशतकम्**

अर्थात् विद्या से विनय, विनय से सत्पात्रता, सत्पात्रता से धन, धन से धर्म, धर्म से सुख—और आत्मा की चरम उपलब्धि—मुक्ति का सुख प्राप्त होता है। ज्ञानहीन मानव पशु के समान है, वह शव है। ज्ञान से ही शव मे शिवत्व अर्थात् चैतन्य और परकल्याण एव आत्मकल्याण के भाव जागृत होते हैं। यह लोकोत्तर कार्य उपाध्याय परमेष्ठी द्वारा ही सम्भव होता है।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की ज्ञानाश्रयी निर्गुण धारा के प्रमुख कवि कबीरदासजी ने तो गुरु को साक्षात् ईश्वर ही माना है—

"गुरु गोविन्द दोनो खडे काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दिया बताय॥"

इस साखी मे गुरु का विनय गण और महिमा वर्णित है। गुरु को देव, ब्रह्मा विष्ण और महेश्वर मानने की भारतीय आस्था आज भी अक्षुण्ण है।

"गुरुर्ब्रह्मा गुर्विष्णु, गुरुदेवो महेश्वर।
गुरु साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नम॥"

ज्ञान के पाच भद है किन्तु उनमे श्रतज्ञान को छोड शेष चार तो स्वगुण मौनधर्मी है। श्रुतज्ञान ही स्व एव अन्य सभी का उपकार कर सकता है। अत श्रुतज्ञान को ज्ञान का जनक कहा जाता है जिससे चारो ज्ञान रूप पुत्र पैदा हो सकते है। हमे ऐमे श्रतज्ञानधारी उपाध्याय महाराज से श्रुतज्ञान प्राप्त कर उत्तरोत्तर केवलज्ञान की प्राप्ति करनी है और उसके लिए एकमात्र आधार उपाध्याय परमेष्ठी है।"* विश्वास धर्म की जड है और इस जड की जड है। जब तक ज्ञानहीन विश्वास रहेगा तब तक प्राणी का चित्त अस्थिर रहेगा। ज्ञान नेत्र ही वास्तविक नेत्र है। यह नेत्र उपाध्याय परमेष्ठी अर्थात विद्यागुरु की सत्कृपा से ही क्रियाशील होता है। मानव एक अनगढ पाषाण है उसमे अन्तर्निहित प्रतिभा और ज्ञान का प्रकाशन—सौन्दर्य और देवत्व का उद्भावन—उद्भावन शिल्पी गुरु—उपाध्याय द्वारा ही होता है।

णमोलोए सव्व साहूण—

नरलोक के समस्त साधुओ को नमस्कार हो। ये मुनि निरन्तर अनन्त ज्ञान दर्शन चारित्र एव वीर्य आदि रूप विशुद्ध आत्मा के स्वरूप म लीन रहते है। शेष चार परमेष्ठी मुनि या साधु अवस्था मे दीक्षित होकर सुदीर्घ साधना के अनन्तर ही मुक्ति के अधिकारी होते है। अत साक्षात मुक्ति-स्वरूप इन परम विरागी साधुओ को मनसा, वाचा, कर्मणा नमस्कार हो। अरिहन्त और सिद्ध तो साक्षात् देवस्वरूप है, परन्तु साधु तो अभी देव मार्ग पर है और मुक्ति के आकाक्षी हैं। यह

---

* सर्वधर्मसार—महामन्त्र नवकार —पृ० 92

क्रम का अन्तर होने पर भी साधु भी पूर्णतया वन्दय पचम परमेष्ठी हैं। लक्ष्य सब परमेष्ठियो का एक है और वह अटल है। ये 28 मूलगुणो के धारक हैं। समस्त अन्त बाह्य परिग्रह को त्यागकर शुद्ध मन से मुनिधर्म को अगीकृत करके हो ये साधु बनते है। ये साधु परम अहिंसक, अपरिग्रही एव तपोनिष्ठ होते है।

आचार्य, उपाध्याय और साधु को देव या परमेष्ठी मानने मे कभी-कभी श्रावको या भक्तो के मन मे शका उठती है कि अरिहन्त और सिद्ध तो आत्मस्वरूप को प्राप्त कर चुके है, निष्कर्मता भी उन्हे प्राप्त हो चुकी है अत उनका देवत्व निश्चित हो चुका है—उनका परमेष्ठीत्व प्रमाणित हो चुका, परन्तु आचार्य, उपाध्याय और साधु मे तो अभी रत्नत्रय की पूर्णता का अभाव है। आत्मस्वरूप की प्राप्ति अभी नही हुई है, अभी घातिया कर्मों का नाश भी नही किया है, अतः इन्हे देव या परमेष्ठी मानना उचित नही है।

इस शका का समाधान यह है कि उक्त शका अशतः ठीक है परन्तु पूर्णतया ठीक नही है। उक्त तीन परमेष्ठी सुनिश्चित रूप से रत्नत्रय के आराधक है और अभी उनकी आराधना अधूरी है परन्तु उसकी पूर्णता सुनिश्चित है। रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, एव सम्यक् चारित्र्य के अनन्त भेद है और इन सबमे देवत्व है। अत इनका आशिक पालन करने वाले और पूर्णता के प्रति कृतसकल्प उक्त आचार्य, उपाध्याय एवं साधु परमेष्ठी भी वास्तविक परमेष्ठी है। आत्म-विकास की अपेक्षा से उक्त पाचो को परमेष्ठी मानकर नमस्कार किया गया है। प्रशस्त विचारक आचार्य तुलसी जी ने भी उक्त शका का समुचित समाधान प्रस्तुत किया है—"आचार्य और उपाध्याय अरिहन्तो के प्रतिनिधि होते हैं। अरिहन्तो की अनुपस्थिति मे आचार्य और उपाध्याय उनका काम करते है। इसीलिए उन्हे भी परमेष्ठी मान लिया गया। अब प्रश्न रहा साधु का। इसका सीधा समाधान यही है कि अर्हत् हो, आचार्य हो या उपाध्याय हो—ये सब पहले साधु है और बाद मे और कुछ। वास्तव मे तो साधु ही परमेष्ठी का रूप है। भगवद्-गीता की टीका में एक पद्य है—

कान्ताकाञ्चनचक्रेषु भ्राम्यतिभुवनत्रयम्।
तासु तेषु विरक्तोयः द्वितीयः परमेश्वर ।।

सारा ससार स्त्री और काचन के चक्र मे घूम रहा है, जो व्यक्ति इनसे विरक्त रहता है, वह दूसरा परमेश्वर है। साधु अर्हत् बनने की साधना कर रहा है, इससे वह भी परमेष्ठी बन जाता है।*

मथितार्थ—उक्त महामन्त्र विशुद्ध रूप से गुणो को सर्वोपरि महत्त्व देकर उनकी वन्दना का मन्त्र है। किसी व्यक्ति, जाति या धर्म विशेष का इसमे उल्लेख नही है। अत यह सार्वजनिक, सार्वधार्मिक एव देश-कालजयी सर्वप्रिय नमस्कार महामन्त्र है। इसमे नम शब्द के द्वारा भक्त की निरहकारी निर्मल मन स्थिति प्रकट की गयी है तो दूसरी ओर गुणात्मकता के कारण विश्व विश्रुत शक्तियो की महत्ता को स्वीकारा गया है, किसी सासारिक या पारलौकिक लाभ का सकेत भी भक्त नही देता है। अत भक्त की भी महानता का पता लगता ही है। ससार मे सरल और विशुद्ध विनयी होना सबसे कठिन काम है। यह मन्त्र सरलता की नीव पर ही खडा है। सरलता का अर्थ है निर्विकार—निष्कर्म अवस्था।

पदक्रम—

णमोकार महामन्त्र मे पदक्रम रखा गया है—अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। इन पच परमेष्ठियो के गुणो के आधार पर जो वरिष्ठता का क्रम बनता है उसके अनुसार णमोकार मन्त्र का क्रम ठीक नही बैठता है। सिद्ध परमेष्ठी मे रत्नत्रय की पूर्णता होती है और अष्ट कर्मो का पूर्ण क्षय भी वे कर चुके होते है। ये बाते अरिहन्त परमेष्ठी मे नही होती है अत सिद्धो को मन्त्र मे प्रथम स्थान प्राप्त होना चाहिए था। यह शका स्वाभाविक है। परन्तु यह महामन्त्र अति-प्राचीन है और अनाद्यनन्त है। इसके रचयिता भी यदि रहे हो तो कम-से-कम परममेधावी तीर्थंकर कोटि के ही रहे होगे। उनकी वाणी को ही गणधरो ने ग्रथित किया होगा। तब क्या उन्हे इस वरिष्ठता क्रम का ज्ञान न था? अवश्य था। तब उक्त क्रम के लिए उनके मन मे कोई

---

* 'तीर्थंकर' नव-दिस० 80, पृ० 36

बात अवश्य रही होगी। विद्वानों ने इस पर विचार किया है और समाधान भी प्राप्त किया है। निश्चय नय की दृष्टि से तो सिद्ध परमेष्ठी ही क्रम में प्रथम आते है परन्तु अरिहन्तों के द्वारा ही जन-समुदाय को उपदेश का लाभ होता है और मुक्ति का मार्ग खुलता है, सिद्धो से इस बात में वे आगे हैं। दूसरी बात यह है कि अरिहन्तों के कारण सिद्धों के प्रति लोगों मे अधिक श्रद्धा उत्पन्न होती है। अतः उपकार की अपेक्षा से ही अरिहन्तो को प्राथमिकता दी गयी है।

पच परमेष्ठियों पर वास्तविक गुणों के धरातल पर विचार किया जाए तो अरिहन्त और सिद्ध तो आत्मोपलब्धि के निश्चय के कारण साक्षात् देव कोटि (प्रभु कोटि) मे आते हैं। शेष तीन परमेष्ठी अभी साधक मात्र है अत वे गुरु कोटि मे आते है। ये तीन तो अभी अरिहन्त एव सिद्ध के उपासक है और गृहस्थो एव श्रावको द्वारा पूज्य हैं।

इसी प्रकार दूसरी शका यह उठती है कि साधु परमेष्ठी आचार्य और उपाध्याय से श्रेष्ठ हैं क्योंकि आचार्य और उपाध्याय साधु अवस्था धारण करके ही मुक्ति प्राप्त कर सकते है और अभी वे साधु नही है। यहा ध्यान फिर द्रव्य और भाव पक्ष पर देना है। मुनि या साधु को उपदेश देने का कार्य आचार्य एव उपाध्याय ही करते हैं। अतः इसी भाव या अन्तरग पक्ष का ध्यान रखकर उक्त क्रम रखा गया है।

ज्ञान के धरातल पर उपाध्याय आचार्य से भी आगे होते हैं परन्तु आचार्य परमेष्ठी द्वारा प्रकट शासन व्यवस्था और धार्मिक संघों का चरित्र पालन होता है, अतः उन्हें इसी उपकार एव व्यवहार भावना के कारण उपाध्याय से पहले स्थान दिया गया है।

डॉ० नेमीचन्द ज्योतिषाचार्य का विचार भी पदक्रम के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण एव विश्वसनीय है—'ऐसा प्रतीत होता है कि इस महामन्त्र मे परमेष्ठियो को रत्नत्रय गुण की पूर्णता और अपूर्णता के कारण दो भागों मे विभक्त किया गया है। प्रथम विभाग में अरिहन्त और सिद्ध है। द्वितीय विभाग मे आचार्य उपाध्याय और साधु हैं। प्रथम विभाग मे रत्नत्रय गुण की न्यूनता वाले परमेष्ठी को पहले और रत्नत्रय गुण की पूर्णता वाले परमेष्ठी को पश्चात् रखा गया है। इस क्रम के अनुसार

अरिहन्त को पहले और सिद्ध को बाद मे पठित किया गया है। दूसरे विभाग मे भी यही क्रम है। आचार्य और उपाध्याय की अपेक्षा मुनि का (साधु का) स्थान ऊंचा है, क्योकि गुणस्थान आरोहण मुनिपद से ही होता है, आचार्य और उपाध्याय पद मे नहीं। यही कारण है कि अन्तिम समय मे आचार्य और उपाध्याय को अपना-अपना पद छोडकर मुनिपद धारण करना पडता है। मुक्ति भी मुनिपद से ही होती है तथा रत्नत्रय की पूर्णता इसी पद मे सम्भव है। अतः दोनो विभागो मे उन्नत आत्माओ को पश्चात् पठित किया गया है।"*

विचार करने पर यह समाधान उतना ही विश्वसनीय एव तर्काश्रित नही लगता जितना कि यह तर्क कि परमेष्ठियो के वर्तमान पदक्रम मे लोकोपकार भाव को अग्रिमता के कारण ही मौजूदा क्रम अपनाया गया है। आत्मकल्याण और लोकोपकार को दृष्टि मे रखकर यह क्रम अपनाया गया है। बात यह है कि वर्तमान क्रम की सार्थकता, महत्ता और औचित्य मे कोई-न-कोई ठोस कारण जो विश्वसनीय हो, होना ही चाहिए।

महामन्त्र णमोकार और मातृकाओ का सम्बन्ध—

वर्णमातृका के स्वरूप और महत्त्व पर सक्षेप मे इस पूर्व इगित किया जा चुका है। अक्षर, वर्ण एव शब्द रूप मे मातृका शक्ति का विस्तार है। हमारे समस्त जीवन मे यह शक्ति कार्य करती है। जब तक हम इसे जानते नही हैं और सकल्पपूर्वक इसका प्रयोग नही करते हैं, तब तक अनुकूल फल सम्भव नही होता है।

णमोकार महामन्त्र मे समस्त मातृका शक्ति का प्रयोग हुआ है। अन्य किसी भी मन्त्र मे यह बात नही है। यह इस महामन्त्र को अद्भुत विशेषता है। इससे भी इस मन्त्र का लोकोत्तरत्व सिद्ध होता है।

पदक्रम के अनुसार मातृका विश्लेषण—

---

* मगलमन्त्र णमोकार—पृ० 56

1 णमो अरिहंताणं—

1 3 2
ण् + अ, म् + आ, अ + र् + इ ह + अ, त + आ, ण + अ।

2 णमो सिद्धाणं—

4
ण + अ, म + ओ, स + इ, द् + ध् + आ, ण् + अ।

3 णमो आइरियाणं—

7 + 8 15 + 16
ण + अ, म + ओ, आ + इ, र + इ, य + आ, ण् + अ।

4 णमो उवज्झायाणं—

5
ण + अ, म + ओ, उ, व् + अ, ज्, झ् + आ, य + आ, ण + अ।

5 णमो लोए सव्व साहूणं—

9 + 10 13 + 14 11 + 12
ण + अ, म + ओ, ल् + ओ, ए, स + अ, व् + व् + अ
6
स + आ, ह् + ऊ, ण + अ।

उक्त विश्लेषण मे स्वर मातृकाए—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अ अः

उक्त सभी सोलह (16) स्वर णमोकार मन्त्र मे सयोजन प्रक्रिया से प्राप्त होते हैं। कुछ स्वर यथा—

ई, ॠ, ॡ, ऐ, औ, अ

सीधे प्राप्त नही होते हैं। इनके मूल योजक तत्त्वो के माध्यम से इन्हे प्राप्त किया जा सकता है।

यथा—इ + इ = ई। र ऋ का प्रतीक है। ल् ऌ का प्रतीक है। अ + इ = ऐ। अ + ओ = औ। अ + अ = अ।

पुनरक्त स्वरो को पृथक् कर देने पर पूरे 16 स्वर मिलते हैं।

व्यंजन मातृकाएं—

क ख ग घ ङ्, च छ ज झ, ट, ठ, ड ढ ण, त थ द ध न,
प फ ब भ म, य र ल व, श ष, स, ह्

ध्वनि सिद्धान्त के अनुसार उच्चारण स्थान की एकता के कारण कोई भी वर्गाक्षर वर्ग का प्रतिनिधित्व कर सकता है। णमोकार मन्त्र में व्यजन मातृकाओ को समझने मे इस सिद्धान्त का ध्यान रखना है।

पुनरक्त व्यजनो के बाद कुल व्यजन मन्त्र मे है—

ण् + म् + र् + ह + त् + स् + य + र् + ल् + व् + ज् + झ + ह्

उक्त व्यजन ध्वनियो को वर्ण मातृकाओ मे इस प्रकार घटित किया जा सकता है—

घ = कवर्ग, ज = चवर्ग, ण् = टवर्ग, ध = तवर्ग, म = पवर्ग, य, र, ल, व, स = श, ष, स, ह।

अत णमोकार महामन्त्र मे समस्त स्वर एव व्यजन मातृका ध्वनिया विद्यमान है

मन्त्र सूत्रात्मक ही होते है। अत मातृका ध्वनियो को साकेतिक एव प्रतीकात्मक पद्धति मे ही ग्रहण किया जा सकता है। सकेत अवश्य ही व्याकरण एव भाषा विज्ञान सम्मत होना चाहिए। डॉ० नेमीचन्द्र शास्त्री जी ने उक्त विश्लेषण क्रम अपनाया है। इस विश्लेषण में उनके क्रम से सहायता ली गयी है। क्ष, त्र, ज्ञ ये तीन स्वतन्त्र व्यजन नही हैं, ये सयुक्त है। इन्हे इसीलिए मातृकाओं मे सम्मिलित नही किया गया है। सयुक्त रूप से अशान्वय से इन्हे भी क्, त्, ज् के रूप मे उक्त मन्त्र मे स्थान है ही।

विभिन्न नाम—

इस महामन्त्र को भक्ति, श्रद्धा और तर्क के आधार पर अनेक नाम दिए गए है। इनमे णमोकार मन्त्र, पच नमस्कार मन्त्र, पच परमेष्ठी मन्त्र, महामन्त्र और नवकार मन्त्र। नवकार मन्त्र को छोडकर अन्य नामो मे नाम मात्र का ही अन्तर है बाकी तो मूल मन्त्र वही है जिसमें पच परमेष्ठियो को नमस्कार किया गया है।

नवकार—

नवकार मन्त्र कहने वालो ने इस मन्त्र मे एक चार चरणो या पदों वाला मगल श्लोक भी सम्मिलित कर लिया है। वास्तव मे मूलमन्त्र तो पाच पदो का ही है। परन्तु चूलिका रूप चार पद जो मूल मन्त्र के फल को बताते हैं, उन्हे भी भक्तिवश मन्त्र के उत्तरार्ध के रूप में स्वीकार किया गया है।

मूलमन्त्र पांच पद—

णमो अरिहनाण, णमो सिद्धाण, णमो आइरियाण,
णमो उवज्झायाण, णमोलोए सव्वसाहूण।

चूलिका या मन्त्र का उत्तरार्ध—

एसो पच णमोक्कारो सव्वपावप्पणासणो।
मगलाण च सव्वेसि, पढम हवइ मगल॥

अर्थात यह पच नमस्कार मन्त्र समस्त पापो का नाशक है और समस्त मगलो मे प्रथम मगल है।

मगल पाठ के समय अर्थात किसी साधु या साध्वी के प्रवचन के पश्चात और कभी कभी प्रारम्भ मे मगलाचरण क रूप मे भी इसका पाठ किया जाता है। इसके साथ निम्नलिखित पाठ भी बोला जाता है—

चत्तारि मगल, अरिहता मगल,
सिद्धा मगल, साहू मगल,
केवली पण्णत्तो धम्मो मगलम।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहता लोगुत्तमा,
सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,
केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरण पव्वज्जामि, अरिहता सरण पव्वज्जामि,
सिद्धा सरण पव्वज्जामि, साहू सरण पव्वज्जामि,
केवलीपण्णत्त धम्म सरण पव्वज्जामि।

मगल पाठ की इन पक्तियो मे चार को ही मगल स्वरूप माना गया है। ये चार है—अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवली द्वारा प्रणीतधर्म। उक्त चार ही ससार मे श्रेष्ठ है। मैं इन चारो की शरण लेता हूं और किसी की नही।

यहा ध्यान देने की बात यह है कि णमोकार मन्त्र को नवकार का विस्तार देते समय उसके अक्षुण्ण रूप की रक्षा करते हुए उसके फल और महत्त्व को भी उसमे मिला लिया गया है। परन्तु मगल पाठ मे, केवल अरिहन्त, सिद्ध और साधु को ही लिया गया गया है, केवली प्रणीत धर्म की महत्ता की शरण ली गयी है। आचार्यों और उपाध्यायों को छोड दिया गया है। वास्तव मे रत्नत्रय को विशदता और चारित्र्य की उदात्तता के ध्यान मे सम्भवत ऐसा किया गया होगा। अरिहन्त और सिद्ध तो देव ही है और साधु भी देवतुल्य ही हैं। आचार्य और उपाध्याय को केवली प्रणीत धर्म के व्याख्याता के रूप मे चतुर्थ मगल के अन्तर्गत गर्भित करके समझना समीचीन होगा।

ओंकारात्मक—

सक्षिप्तता और सुकरता के कारण इस महामन्त्र को ओंकारात्मक भी माना गया है। विद्वानो और भक्तो का एक शक्तिशाली वर्ग है जो पंच नमस्कार मन्त्र का ओंकार का ही विकसित रूप मानता है। ओंकार मे पच परमेष्ठी गर्भित है ऐसी उस वर्ग की मान्यता है। सभी वर्गों मे इस मान्यता का आदर है।

ओंकार मे पचपरमेष्ठी इस प्रकार गर्भित हैं—

1 अरिहन्त	—	अ	
2 (सिद्ध) अशरीरी	—	अ	
3. आचार्य	—	आ	अ+अ+आ=आ
4. उपाध्याय	—	उ	आ+उ=ओ
5 (साधु) मुनि	—	म्	ओ+म्=ओम्

इसी पचपरमेष्ठी युक्त ओंकार के विषय में यह श्लोक सर्वविदित है—

"ओंकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः॥"

ओंकार को कई प्रकार से लिखा जाता है—

(1) ओम्, (2) ओ म्, (3) ॐ।

जैन परम्परा मे तीसरा रूप (ॐ) हा प्रचलित है। ॐ का चन्द्रबिन्दु सिद्धो का प्रतीक है और अर्धचन्द्र है सिद्धशिला का प्रतीक। आशय यह हुआ कि ॐकार के नियमित स्तवन और जाप से भक्त स्वयसिद्ध स्वरूप की प्राप्ति करता है।

असिआउसा—

णमोकार मन्त्र का यह एक संक्षिप्त रूप और है। सक्षेपीकरण इस प्रकार है—

अरिहन्त	—	अ
सिद्ध	—	सि
आचार्य	—	आ
उपाध्याय	—	उ
साधु	—	सा

भक्तो में इस बीजाक्षरी संक्षिप्त मन्त्र का भी खूब माहात्म्य एवं प्रचलन है। इसमे प्रत्येक परमेष्ठी का पहला अक्षर ज्यो का त्यो लेकर उसकी निर्विकारता की पूरी रक्षा का भाव है। अतः जिन भक्तो के पास समय और शक्ति की कमी है वे इस संक्षिप्त मन्त्र के द्वारा भी पूर्ण लाभ ले सकते हैं। ☐

णमोकार मन्त्र का माहात्म्य एवं प्रभाव

अनादि-अनन्त णमोकार महामन्त्र के महामन्त्र के माहात्म्य का अर्थ है उसकी महती आत्मा (आत्म-शक्ति) अर्थात् अतरग और मूलभूत शक्ति। इसी को हम उस मन्त्र का गौरव, यश और महत्ता कहकर भी समझते हैं। यह मूलत आत्म-शक्ति का, आत्म-शक्ति के लिए और आत्म-शक्ति के द्वारा अपरिमेय काल से कालजयी होकर, समस्त सृष्टि मे जिजीविषा से लेकर भुभुक्षा तक की सन्देश तरगिणी का महामन्त्र है। इस मन्त्र की महिमा का जहा तक प्रश्न है वह तो हमारे समस्त आगमो मे बहुत विस्तार के साथ वर्णित है। यह मन्त्र हमारी आत्मा की स्वतन्त्रता अर्थात् उसकी सहजता को प्राप्त कराकर उसे परमात्मा बनाने का सबसे बडा, सरलतम और सुन्दरतम साधन है। यही इसकी सबसे बडी महत्ता है। इसके पश्चात हमारी समस्त सामारिक उलझने तो इस मन्त्र के द्वारा अनायास ही सुलझती चली जाती हैं। पारिवारिक कलह, शारीरिक-मानसिक रुग्णता, निर्धनता, अपमान अनादर, सन्तानहीनता आदि बाते भी इस महामन्त्र के द्वारा अपना समाधान पाती है। आशय यह है कि यह मन्त्र मानव को धीरे-धीरे ससार मे रहकर ससार को कैसे जीतना है यह सिखाता है और फिर मानव मे ही ऐसी आन्तरिक शक्ति उत्पन्न करता है कि मानव स्वत निर्लिप्त और निर्विकार होने लगता है। उसे स्वात्मा मे ही परम तृप्ति का अनुभव होने लगता है। अत इस महामन्त्र के भी शारीरिक और आत्मिक धरातलो का पूरी तरह समझकर ही हम इसकी सम्पूर्ण महत्ता का समझ सकते है।

आगमो मे वर्णित मन्त्र-माहात्म्य—

णमोकार महामन्त्र द्वादशाङ्ग जिनवाणी का सार है। वास्तव मे जिनवाणी का मूल स्रोत यह मन्त्र है ऐसा समझना न्यायसगत है। यह

मन्त्र बीज है और समस्त जैनागम वृक्ष-रूप हैं। कारण पहले होता है और कार्य से छोटा होता है। यह मन्त्र उपादान कारण है।

प्राय. समस्त जैन शास्त्रों के प्रारम्भ मे मगलाचरण के रूप में प्रत्यक्षत णमोकार महामन्त्र को उद्धत कर आचार्यों ने उसकी लोकोत्तर महत्ता को स्वीकार किया है, अथवा देव, शास्त्र और गुरु के नमन द्वारा परोक्ष रूप से उक्त तथ्य को अपनाया है। यहा कुछ प्रसिद्ध उद्धरणो को प्रस्तुत करना पर्याप्त होगा।

इस महामन्त्र की महिमा और उपकारकता पर यह प्रसिद्ध पद्य द्रष्टव्य है—

एसो पंच णमोकारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढ़मं हवइ मंगलं॥

अर्थात् यह पंच नमस्कार-मन्त्र समस्त पापो का नाशक है, समस्त मगलो में पहला मंगल है, इस नमस्कार मन्त्र के पाठ से समस्त मगल होगे। वास्तव मे मूल महामन्त्र तो पचपरमेष्ठियों के नमन से सम्बन्धित पाच पद ही हैं। यह पद्य तो उस महामन्त्र का मंगलपाठ या महिमा-गान है। धीरे धीरे भक्तो मे यह पद्य भी णमोकार मन्त्र का अग सा बन गया और इसके आधार पर महामन्त्र को नवकार मन्त्र अर्थात् नौ पदो वाला मन्त्र भी कहा जाता है।

इसी महत्त्वांकन की परम्परा मे मगलपाठ का और भी विस्तार हुआ है। चार मंगल, चार लोकोत्तर और चार का ही शरण का मगल-पाठ होता ही है। ये चार हैं—अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवली-प्रणीत धर्म। इसमे आचार्य और उपाध्याय को धर्म प्रवर्तक प्रचारक वर्ग के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया गया है अत: खुलासा उल्लेख नही है। कभी-कभी अल्पज्ञता और अदूरदर्शिता के कारण ऐसा भी कतिपय लोगों को भ्रम होता है कि आचार्य और उपाध्याय को ससारी समझकर छोड दिया गया है। वास्तव मे ये दो परमेष्ठी धर्म की जड जैसी महत्ता रखते हैं, इन्हें कैसे छोडा जा सकता है। पाठ द्रष्टव्य है—

चार—मंगल : **चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं**
साहू मंगलं, केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं॥

चार—लोकोत्तम चत्तारि लोगोत्तमा, अरिहंता लोगोत्तमा,
सिद्धा लोगोत्तमा,
साहू लोगोत्तमा, केवली पण्णत्तो धम्मो
लोगोत्तमा ॥

चार—शरण चत्तारि शरण पवज्जामि, अरिहंता शरण
पवज्जामि, सिद्धा शरण पवज्जामि,
साहू शरण पवज्जामि केवली पण्णत्त धम्म
शरण पवज्जामि ॥

अर्थात—चार चार का यह त्रिक जीवन का सर्वस्व है।

चार मगल हैं—अरिहन्त परमेष्ठी, सिद्ध परमेष्ठी साधु परमेष्ठी और केवली प्रणीत धम।

चार लोकोत्तम हैं—अरिहन्त परमेष्ठी, सिद्ध परमेष्ठी, साधु परमेष्ठी और केवली प्रणीत धर्म।

चार शरण है—इस ससार से पार होना है तो ये चार ही सबलतम शरण रक्षा के आधार है।—अरिहन्त परमेष्ठी, सिद्ध परमेष्ठी, साधु परमेष्ठी और केवली प्रणीत धर्म।

एसो पञ्चणमोयारो—गाथा की व्याख्या आचार्य सिद्धचन्द्र गणि ने इस प्रकार की है—(एष पचनमस्कार प्रत्यक्षविधीयमान पचाना-महंदादीना नमस्कार प्रणाम ।)

स च कीदृश ? सर्वपाप प्रणाशन । सर्वाणि च तानि पापानि च सर्वपापानि इति कर्मधारय । सर्व पापाना प्रकर्षेण नाशनो विध्वसक सर्वपाप प्रणाशन, इति तत्पुरुष । सर्वेषा द्रव्यभाव भवभिन्नाना मङ्गलाना प्रथमिदमेव मङ्गलम् ।

पुन सर्वेषा मङ्गलाना—मङ्गल कारकवस्तूना दधिदूर्वाऽक्षतचन्दन-नारिकेल पूर्णकलश स्वस्तिकदर्पण भद्रासनवर्धमान मत्स्ययुगल श्रीवत्स नन्द्यावर्तादीना मध्ये प्रथम मुख्य मगल मङ्गल कारको भवति । यतोऽस्मिन् पठिते जप्ते स्मृते च सर्वाण्यपि मङ्गलानि भवन्तीत्यर्थ ।

अर्थात्—यह पच नमस्कार मन्त्र सभी प्रकार के पापो को नष्ट करता है। अधमतम व्यक्ति भी इस मन्त्र के स्मरण मात्र से पवित्र हो जाता है। यह मन्त्र दधि, दूर्वा, अक्षत, चन्दन, नारियल, पूर्णकलश, स्वस्तिक, दर्पण, भद्रासन, वर्धमान, मत्स्ययुगल, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त आदि मगल वस्तुओ मे सर्वोत्तम है। इसके स्मरण और जप से अनेक सिद्धिया प्राप्त होती हैं।

स्पष्ट है कि इस परम मगलमय महामन्त्र मे अद्भुत लोकोत्तर शक्ति है। यह विद्युत तरग की भाति भक्तो के शारीरिक, मानसिक एव आध्यात्मिक सकटो को तुरन्त नष्ट करता है और अपार विश्वास और आत्मबल का अविरल सचार करता है। वास्तव मे इस महामन्त्र के स्मरण, उच्चारण या जप से भक्त की अपनी अपराजेय चैतन्य शक्ति जाग जाती है। यह कुडलिनी (तेजस शरीर) के माध्यम से हमारी आत्मा के अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान और अनन्त वीर्य को शाणित एव सक्रिय करता है। अर्थात आत्म साक्षात्कार इससे होता है।

पच परमेष्ठियो की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए उनसे जन-कल्याण की प्रार्थना इस प्रसिद्ध शार्दूल विक्रीडित छन्द मे की गयी है—

> **"अर्हन्तो भगवन्त इन्द्र महिताः सिद्धाश्च सिद्धि स्थिताः।**
> **आचार्याजिन शासनोन्नतिकरा. पूज्या उपाध्यायका.॥**
> **श्रीसिद्धान्त सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधका.।**
> **पचते परमेष्ठिन प्रतिदिनं कुर्वन्तुनो मङ्गलम्॥'**

जिनशासन मे अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इन पाचो की परमेष्ठी सज्ञा है। ये परम पद मे स्थित हैं अत. परमेष्ठी कहे जाते हैं। चार घातिया कर्मो का क्षय कर चुकने वाले, इन्द्रादि द्वारा पूज्य, केवलज्ञानी, शरीरधारी होकर भी जो विदेहावस्था मे रहते हैं, तीर्थंकर पद जिनके उदय मे है, ऐसे अरिहन्त परमेष्ठी हमारा सदा मगल कर। अष्ट कर्मों के नाशक, अशरीरी, परम निर्विकार सिद्ध परमेष्ठी हमारा सदा मगल करे। जिनशासन की सर्वतोमुखी उन्नति जिनके द्वारा होती है और जो स्वय शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार चरित्र पालन करते हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी तथा समस्त शास्त्रो के ज्ञाता

और श्रेष्ठतम प्राध्यापक परम गुरु उपाध्याय परमेष्ठी हम सब का सदा मगल कर। समस्त मुनि सघ के ये सर्वोच्च अध्यापक होते हैं। रत्नत्रय (सम्यक दर्शन—ज्ञान—चारित्र्य) की निरन्तर आराधना मे लीन परम अपरिग्रही साधु परमेष्ठी हम सब का मगल कर।

किसी भी व्यक्ति या वस्तु की महानता उसम निहित गुणो के कारण ही मानी जाती है। फिर ये गुण जब स्व से भी अधिक पर कल्याणकारी अधिक होते हैं तभी उनकी प्रतिष्ठा होती है। इस कसौटी पर पच परमेष्ठी बिल्कुल खरे उतरते हैं। जन्म मरण रोग, बुढापा, भय पराभव दारिद्रय एव निर्बलता आदि इस महामन्त्र के स्मरण एव जाप से क्षण भर मे नष्ट हो जाते हैं। णमोकार मन्त्र के माहात्म्य वर्णन को समझ लेने पर फिर और अधिक समझने की आवश्यकता नही रह जाती है—

अपवित्र पवित्रो वा, सुस्थितो दुस्थितो पि वा।
ध्यातेत् पच नमस्कार, सव पापै प्रमुच्यते ॥1॥
अपवित्र पवित्रो वा, सर्वावस्था गतोऽपि वा।
य स्मरेत परमात्मान स बाह्याभ्यन्तरे शुचि ॥2॥
अपराजित मन्त्रोऽय सवविघ्नविनाशन।
मगलेषु च सर्वेषु प्रथम मगल मत ॥3॥
विघ्नौघा प्रलय यान्ति शाकिनीभूत पन्नगा।
विषो निर्विषता याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥4॥
मन्त्र ससार सार त्रिजगदनुपम सव पापारि मन्त्र,
ससारोच्छद मन्त्र विषम विषहर कम निर्मूल मन्त्रम्।
मन्त्र सिद्धि प्रदान शिव सुख जनन केवलज्ञान मन्त्र,
मन्त्र श्रीजैन मन्त्र जप जप जपित जन्म निर्वाण मन्त्रम् ॥5॥
आकृष्टि सुर सम्पदा विदधते मुक्तिश्रियो वश्यता,
उच्चाट विपदा चतुर्गतिभुवा विद्वेषमात्मेनसाम्।
स्तम्भ दुर्गमनप्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहन,
पायात् पचनमस्कारक्रियाक्षरमयी साराधना देवता ॥6॥
अर्हमित्यक्षर ब्रह्म वाचक परमेष्ठिन।
सिद्ध चक्रस्य सद्बीज सवत प्रणमाम्यहम् ॥7॥

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव मम।
तस्मात् कारुण्य भावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥8॥

× × ×

वन्दो पाचों परम गुरु सुर गुरु वन्दत जास।
विघन हरन मगल करन, पूरन परम प्रकाश ॥9॥

उक्त पद्यो का मथितार्थ यह है—

पच नमस्कार महामन्त्र का स्मरण अथवा पाठ करने वाला श्रद्धालु भक्त पवित्र हो अपवित्र हो, सोता हो, जागता हो, उचित आगन मे हो, न हो फिर भी वह शरीर और मन के (बाहरी-भीतरी) सभी पापो से मुक्त हो जाता है। उसका शरीर और मन अद्भुत पवित्रता से भर जाता है। मानव का यह शरीर लाख प्रयत्न करने पर भी सदा अनेक रूपो मे अपवित्र रहता ही है, प्रयत्न यह होना चाहिए कि हमारी ओर से पवित्रता के प्रति सावधान रहा जाए। इस शरीर से भी हजार गुना मन चचल होता है और पाप प्रवृत्ति मे लीन रहकर अपवित्र रहता है। केवल णमोकार मन्त्र की पवित्रतम शरण ही इस जीव को शरीर और मन की पवित्रता प्रदान करती है। यह मन्त्र किसी भी अन्य मन्त्र या शक्ति से पराजित नही हो सकता, बल्कि सभी मन्त्र इसके अधीन हैं। यह मन्त्र समस्त विघ्नो का विनाशक है। समस्त मगलो मे प्रथम मगल के रूप मे सर्व-स्वीकृत है। महत्ता और कालक्रम से इसकी प्रथमता सुनिश्चित है। इस मन्त्र के प्रभाव से विघ्नो का दल, शाकिनी, डाकिनी, भूत सर्प विष आदि का भय क्षण भर मे प्रलय को प्राप्त हो जाता है।

यह मन्त्र समस्त ससार का सार है। त्रैलोक्य मे अनुपम है और समस्त पापो का नाशक है। विषम विष को हरने वाला और कर्मो का निर्मूलक है। यह मन्त्र कोई जादू टोना या चमत्कार नही है, परन्तु इसका प्रभाव निश्चित रूप से चमत्कारी होता है। प्रभाव की तीव्रता और अनुपमता से भक्त आश्चर्यचकित होकर रह जाता है। यह मन्त्र समस्त सिद्धियो का प्रदाता मुक्ति सुख का दाता है, यह मन्त्र साक्षात् केवलज्ञान है। विधिपूर्वक और भाव सहित इसका जाप या स्मरण करने से सभी प्रकार की लौकिक-अलौकिक सिद्धिया प्राप्त होती हैं।

इससे समस्त देव सम्पदा वशीभूत हो जाती है। मुक्तिवधू वश मे हो जाती है। चतुर्गति के सभी कष्टो को भस्म करने वाला यह मन्त्र है। मोह का स्तम्भक और विषयासक्ति को समाप्त करने वाला है। आत्म-विश्वास को प्रबलता देने वाला तथा सभी स्थितियो मे जीव मात्र का परम मित्र है। अर्ह यह अक्षर युगल साक्षात ब्रह्म है और परमेष्ठी का वाचक है। सिद्धियो की माला का मदबीज है। मैं इसको मन, वचन और काय की समग्रता से प्रणाम करता हू। हे जिनेश्वर रूप महामन्त्र मुझे आपके अतिरिक्त कोई अन्य उबारने वाला नही है। आप ही मेरे परम रक्षक है। इसलिए पूर्ण करुणा भाव से हे देव ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

महामन्त्र का प्रभाव—

हम महामन्त्र णमोकार के माहात्म्य को अथवा उसके उपकार को प्रभाव के रूप मे समझ सकते है। अनेक शास्त्रभ्य प्रसगो, कथाओ और उक्तियो द्वारा इस माहात्म्य का लोकोत्तर प्रभाव बताया गया है। अनेकानेक भक्तो ने अपने-अपने अनुभवो को भी इस मन्त्र के प्रभाव के रूप मे प्रकट किया है।

यहा कुछ व्यक्तिगत अनुभवो को उद्धत करके इस महामन्त्र के प्रभाव का स्पष्ट करना अधिक व्यावहारिक होगा।

इस मन्त्र के चमत्कारो और प्रभावो को तीर्थकरो एव मुनियो के जीवन मे भी घटित होते देखा गया है। भगवान पार्श्वनाथ ने इस मन्त्र की आराधना से समस्त उपसर्गो को हसकर सहा। कमठ तपस्वी जो पचाग्नि तप करता था उसकी धूनी मे एक अधजला नाग था, उसको पार्श्वनाथ न णमोकार मन्त्र सुनाकर नागकुमार देव पद प्राप्त कराया।

भगवान महावीर के जीवन मे भी नयसार भव मे एव नौका प्रसग मे णमोकार मन्त्र का साहाय्य रहा।

अजन चोर राजा श्रेणिक, राजा श्रीपाल, सेठ सुदर्शन, जीवन्धर स्वामी एव श्वान आदि के प्रसग सुविदित ही हैं। अर्जुन माली जैसे हत्यारे और मुग्दल सेठ की कथा भी प्रसिद्ध है ही। जैन धर्म की दिगम्बर-श्वताम्बर सभी शाखाओ मे अनेक कथाए महामन्त्र के

प्रभाव पर हैं। पुण्यास्रव और आराधना कथाकोष के अतिरिक्त अनेक शास्त्रों और पुराणो मे भी इस मन्त्र के प्रभाव को कथाओं द्वारा प्रकट किया गया है। मुनि श्री छत्रमल द्वारा रचित 'जैन कथाकोष' में प्रसिद्ध 220 कथाए सग्रहीत है। इनमे अनेक कथाए णमोकार महामन्त्र की महिमा पर आधारित है।

इन पौराणिक प्राचीन कथाओ के अतिरिक्त हमारे नित्यप्रति के जीवन मे घटित मन्त्रमहिमा की अनुभूतियां तो हमसे बिल्कुल सीधी बात करती है। यहा अत्यन्त प्रसिद्ध कतिपय कथाए सक्षेप मे प्रस्तुत हैं—

अन्तकृतदशा-6

अर्जुन माली—

मगध देश की राजधानी राजगृही मे अपनी पत्नी बन्धुमती सहित अर्जुन नामक एक माली रहता था। नगर के बाहर एक बगीचे मे यक्ष-मन्दिर था। अर्जुन अपनी पत्नी सहित इस बगीचे के फूल तोड़ता, यक्ष-पूजा करता और फिर उन्हे बाजार मे बेचकर जीविका चलाता था।

एक दिन अर्जुन यक्ष की पूजा मे लीन था और उसकी पत्नी बाहर पुष्प बीन रही थी। सहसा नगर के छह गुण्डे वहा आ गए। बन्धुमती की सुन्दरता और जवानी पर वे मुग्ध हो गए। बस एकान्त देखकर उसके साथ बलात्कार करने पर तुल गए। अर्जुन का यक्ष की प्रतिमा से बाध दिया और वे बन्धुमती का शील भग करने लगे। अर्जुन इस अत्याचार से तिलमिला उठा। उसने यक्ष से कहा, हे यक्ष, मैंने तुम्हारी जीवन भर सेवा-पूजा यही फल पाने के लिए की है। मेरी सहायता कर— मुझे शक्ति दे, या फिर ध्वस्त होने के लिए तैयार हो जा।

यक्ष का चैतन्य चमक उठा—उसने एक शक्ति के रूप मे अर्जुन माली के शरीर मे प्रवेश किया, बस, अर्जुन मे अपार शक्ति आ गयी। उसने क्रोध मे पागल होकर छहों गुण्डो की हत्या की। अपनी पत्नी को भी समाप्त कर दिया। फिर तो उस पर हत्या का भूत ही सवार हो गया। नगर के बाहर वह रहने लगा और जो भी उसे मिलता उसको वह हत्या कर देता। नगर मे आतक छा गया। नगर के भीतर के लोग

भीतर और बाहर के लोग बाहर ही रहने लगे। सम्पर्क टूट गया। वहां से निकलने का किसी का साहस ही नही होता था।

उसी समय श्रमण भगवान महावीर बिहार करते हुए वहां पधारे। राजा श्रेणिक भगवान के दर्शन करना चाहते थे, पर विवश थे। सुदर्शन सेठ ने प्राण हथेली पर रखकर भगवान के दर्शन करने का निश्चय किया। बस राजा से अनुमति ली और चल पडे। नगर के बाहर पैर रखते ही अर्जुन से उनका सामना हुआ। अर्जुन ने अपना कठोर मुद्गल सुदर्शन को मारने के लिए उठाया, पर आश्चर्य की बात यह हुई कि अर्जुन हाथ उठाए हुए कीलित होकर रह गया। यक्ष-शक्ति भी कीलित हो गयी। क्यो ? सेठ सुदर्शन ने परम शान्तचित्त से महामन्त्र णमोकार का स्तवन आरम्भ कर दिया और ध्यानस्थ खड़ रहे। कुछ देर तक यही स्थिति रही। मन्त्र की सरक्षिणी देवियां सेठ की रक्षा के लिए आ गयी थी। बस नमस्कार करके यक्ष भाग खडा हुआ और अर्जुन असहाय हो गया। उसे अपनी भूख-प्यास और असहायावस्था का बोध हुआ। उसने सेठ सुदर्शन से पूर्ण विनीत भाव से क्षमा मागी। भगवान की शरण में जाकर मुनिव्रत धारण कर लिया। नगरवासियों को उसे देखते ही बहुत क्रोध आया और शब्दो के द्वारा तथा पत्थरो के द्वारा मुनि-अर्जुन का तिरस्कार हुआ। अर्जुन ने यह बडे धैर्य के साथ सहा. वह अविचल रहा। सुदर्शन सेठ से उसने महामन्त्र को गुरुमन्त्र के रूप में ग्रहण कर लिया था। धीरे-धीरे लोगो की धारणा बदली। अर्जुन ने अन्तत सल्लेखना धारण की और आत्मा की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त की।

निष्कर्ष—यह कथा स्पष्ट करती है कि महामन्त्र के प्रभाव से एक भक्त के प्राणों की रक्षा होती है और दूसरी ओर एक हत्यारा अपनी राक्षसीवृत्ति को त्यागकर आत्मकल्याण भी करता है। विश्वास फलदायक।—सही आदमी का सही विश्वास सब कुछ कर सकता है।

"नर हो न निराश करो मन को।"

एकपतित एव अत्यन्त अज्ञानी व्यक्ति भी यदि महामन्त्र से जीवन की सर्वोच्चता प्राप्त कर सकता है तो विवेकशील श्रद्धावान् क्या नहीं पा सकता ?

अंजन चोर की कथा —

दिगम्बर आम्नाय के कथा ग्रन्थों मे अजन चोर की कथा बहुत प्रसिद्ध है। महामन्त्र की महिमा ने एक अत्यन्त पतित व्यक्ति को किस प्रकार जीवन की महानता तक पहुँचाया—यह बात इस कथा द्वारा बडी प्रभाविकता से व्यक्त की गयी है।

ललितांग देव जो अत्यन्त व्यभिचारी चोर और हिंसक प्रवृत्ति का व्यक्ति था, वही बाद मे अजन चोर के रूप मे प्रसिद्ध हुआ। यह चोर कर्म मे इतना निपुण था कि लोगो के देखते-देखते ही उनकी वस्तुओं का अपहरण कर लेता था।

यह स्वय सुन्दर और बली भी था। इसका राजगृही नगरी की प्रधान नर्तकी-वेश्या से (मणिकांचना से) अपार प्रेम था। अजन चोर अपनी इस प्रेमिका पर इतना अधिक आसक्त था कि उसके एक सकेत पर अपने प्राण भी दे सकता था—कुछ अतिमानवीय अथवा अन्यायपूर्ण कार्य करने को तैयार था। ठीक ही है—विषयासक्त व्यक्ति का सब कुछ नष्ट होता ही है।

"विषयासक्त चित्तानां गुणः को वा न नश्यति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्यं न सत्यवाक्॥"

अर्थात् विषयासक्त व्यक्ति का कौन-सा ऐसा गुण है जो नष्ट नही हो जाता, सब कुछ नष्ट हो जाता है। वैदुष्य, मनुष्यता, कुलीनता तथा सत्यवादिता आदि सभी गुण नष्ट हो जाते है।

एक दिन मणिकाचना ने अजन चोर से कहा, प्राणवल्लभ, प्रजापाल महाराज की रानी कनकवती के गले में ज्योतिप्रभा नामक हार आज मैंने देखा है। मैं उसे किसी भी कीमत पर चाहती हू। आप उसे लाकर मुझे दीजिए। मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकती। अजन चोर ने प्रेमिका को समझाया कि दो-चार दिन मे वह उक्त हार ला देगा। उसे कृष्ण पक्ष की विद्यासिद्ध है—उसका अजन कृष्ण पक्ष मे ही काम करता है, अभी शुक्ल पक्ष समाप्ति पर है। थोडी-सी प्रतीक्षा कर लो।

प्रेमिका ने अजनप्रेमी से कहा, मैं बस प्राण ही त्याग दूगी। यही मेरे और आपके प्रेम की परीक्षा है। आप तुरन्त हार ला दे, अन्यथा कल मैं जीवित न रहूगी।

अजन प्रभाव मे आ गया और हार चुराने के लिए अंजन (मंत्रित अजन) लगाकर रात मे निकल पडा। हार चुराने मे वह सफल हो गया। परन्तु रास्ते मे दो बातें प्रतिकूल बन पडी। एक तो हार की ज्योति बाहर चमक उठी और शुक्ल पक्ष के कारण, अजन भी अकिंचित्कर हो गया। और अंजन चोर भी प्रकट रूप से पहरेदारो को दिख गया। पहरेदारो ने पीछा किया। चोर भाग कर समीपवर्ती श्मशान मे एक वृक्ष के नीचे शरण खोजता हुआ पहुचा। उसने ऊपर देखा। वहाँ 108 रस्सियो का एक जाल लटक रहा था। नीचे विविध प्रकार के (32 प्रकार के) शूल, कृपाण, बरछी, भाला आदि शस्त्र ऊर्ध्वमुखी होकर गाडे गये थे। एक व्यक्ति वहाँ णमोकार मन्त्र का जाप करता हुआ क्रमश एक-एक रस्सी काटता जाता था। परन्तु उसका चित्त घबराहट से भरा हुआ था, वह कभी ऊपर चढता तो कभी नीचे उतरता था। अजन चोर ने उससे पूछा, भाई, तुम यह क्या कर रहे हो? उसने कहा मैं मन्त्र द्वारा आकाश-गामिनी विद्या सिद्ध कर रहा हू। अंजन चोर यह सुनकर हसने लगा और बोला, आप तो डरपोक हैं, आपका विश्वास भी कमजोर है, आपको विद्या सिद्ध नही हो सकती। आप मन्त्र मुझे बता दीजिए मैं सिद्ध करूगा। मुझे मरने का भी डर नही है। मै यदि मरूँ भी तो अच्छे कार्य में ही मरना चाहता हू। तब वारिषेण नाम के उस डरपोक साधक ने अजन चोर को णमोकार मन्त्र बताया और मन्त्र सिद्धि की विधि भी बतायी। बस अंजन चोर ने पूरी श्रद्धा के साथ निर्भय होकर मन्त्र पाठ किया और एक-एक आवृत्ति पर एक-एक रस्सी काटता गया। अन्त मे 108वी रस्सी कटते ही, वह नीचे गिरे, इसके पूर्व ही, आकाश गामिनी विद्या ने प्रकट होकर उसे (अजन चोर को) ऊपर उठा लिया। अजन चोर को विद्या ने नमस्कार किया और कहा, मै आपसे प्रसन्न हू, आपके हर सत्कार्य में सहायता करूगी।

अजन चोर को इस घटना से ऐसी लोकोत्तर मानसिक-शान्ति मिली कि बस उसने तुरन्त सुमेरू पर्वत पर पहुचकर दीक्षा ली और कठिन तपश्चर्या करके अष्टकर्मों का नाश किया तथा मोक्ष प्राप्त किया—अर्थात् समस्त संसार के बन्धनो से मुक्त होकर आत्मा की निर्मलतम स्थिति को प्राप्त किया।

एक पापी, दुराचारी व्यक्ति अपनी पूरी श्रद्धा के कारण महामन्त्र की सहायता से बन्धन मुक्त हो सका, जबकि श्रद्धाहीन वारिषेण ज्ञानी होकर भी कुछ न पा सका। श्रद्धाहीन ज्ञान से न व्यक्ति स्वयं को ऊपर उठा सकता है न दूसरों को। कहा भी है—"सशयात्मा विनश्यति" इसी प्रकार अनन्तमती की कथा, रानी प्रभावती की कथा भी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

पशुओं पर भी प्रभाव

1 "णमोकार मन्त्र के प्रभाव से (स्मरण से) बन्दर ने भी आत्म कल्याण किया है'। कहा गया है कि एक अर्धमृत बन्दर को मुनि-राज ने दयाकर णमोकार-मन्त्र सुनाया। बन्दर ने भक्तिपूर्वक णमोकार मन्त्र सुना जिससे वह चित्रागद नामक देव हुआ।"

2 "पुण्याश्रव कथा कोश के अनुसार कीचड में फसा एक हथिनी को णमोकार मन्त्र के श्रवण के प्रभाव से नर पर्याय प्राप्त हुआ।"

3 "पार्श्व पुराण मे भगवान पार्श्वनाथ ने जलते हुए नाग-नागिनी को महामन्त्र सुनाया और अत्यन्त शान्त चित्त से श्रवण के कारण वे नाग-नागिनी बाद मे धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। यह कथा तो सभी जैन-वर्गों मे प्रकारान्तर से प्रसिद्ध है।"

4 "जीवनधर स्वामी ने मरणासन्न कुत्ते को महामन्त्र णमोकार सुनाया था। मन्त्र की पवित्र ध्वनि तरगों का कुत्ते के समस्त शरीर और मन पर अद्भुत सात्विक प्रभाव पडा। और उसने तुरन्त देव पर्याय प्राप्त की।

महामन्त्र के निरादर का फल

आठवे चक्रवर्ती सुभीम का रसोइया बडा स्वामीभक्त था। उसने एक दिन सुभीम को गरम-गरम खीर परोस दी। सुभीम ने गर्म खीर खा ली। उनकी जीभ जलने लगी। बस क्रोध मे भर कर खीर का पूरा बर्तन रसोइये के सिर पर उडेल दिया। इससे वह तुरन्त मरकर व्यंतर देव हुआ। लवण समुद्र मे रहने लगा। उसने अवधि ज्ञान से अपने पूर्वभव की जानकारी प्राप्त की, उसके मन में चक्रवर्ती से बदला लेने की बात ठन गयी।

बस वह तपस्वी का वेष बनाकर और कुछ स्वादिष्ट फल लेकर चक्रवर्ती सुभीम के पास पहुचा। उसने वे फल चक्रवर्ती को दिए। फल बहुत स्वादिष्ट थे। चक्रवर्ती ने और खाने की इच्छा प्रकट की। तपस्वी ने कहा, मैं लवण समुद्र के एक टापू मे रहता हू, वही ये फल प्राप्त होते हैं। आप मेरे साथ चलिए और यथेच्छ रूप से खाइए। चक्रवर्ती लोभ का सवरण न कर सके और उस तपस्वी (व्यतर) के साथ चल दिये।

जब व्यतर समुद्र के बीच मे पहुच गया तो तुरन्त वेष बदलकर क्रोधपूर्वक बोला, "दुष्ट चक्रवर्ती, जानता है मै कौन हू ? मैं ही तेरा पुराना पाचक हू। रसोइया हूं। मै तुझसे बदला लूंगा।"

चक्रवर्ती अत्यन्त असहाय होकर णमोकार मन्त्र का पाठ करने लगे। इस महामन्त्र की महाशक्ति के सामने व्यन्तर की विद्या बेकार हो गयी। तब व्यन्तर ने एक उपाय निकाला। उसने चक्रवर्ती से कहा, "यदि अपने प्राणो की रक्षा चाहते हो तो णमोकार मन्त्र को पानी मे लिखकर उसे अपने पैर के अगूठे से मिटा दो। चक्रवर्ती ने भयभीत होकर तुरन्त णमोकार मन्त्र को पानी मे लिखकर पैर से मिटा दिया। बस व्यन्तर की बात बन बैठी। मन्त्र का प्रभाव अब समाप्त हो गया। तुरन्त व्यन्तर ने चक्रवर्ती को मारकर समुद्र मे फेक दिया और बदला ले लिया। अनादर करने पर महामन्त्र का कोई प्रभाव नही रहता, बल्कि ऐसे व्यक्ति का अपना शरीरबल एव मनोबल भी क्षीण हो जाता है। णमोकार मन्त्र के अपमान के कारण चक्रवर्ती को सप्तम नरक मे जाना पडा।

मन की पवित्रता, उद्देश्य की पवित्रता और शतप्रतिशत आस्था इस महामन्त्र के लिए परमावश्यक है। भक्त अज्ञानी हो, रुग्ण हो, उचित आसन मे न बैठा हो, शारीरिक स्तर पर अपवित्र हो तो भी क्षम्य है। महामन्त्र ऐसे व्यक्ति की भी रक्षा करता है और उसे शक्ति प्रदान करता है। परन्तु जानबूझकर लापरवाही और निरादर करने वालो को मन्त्र-रक्षक देवी-देवता क्षमा नही करते।

"इत्थं ज्ञात्वा महाभव्याः कर्तव्य. परया मुदा।
सार पचनमस्कारः विश्वासः शर्मद. सताम्।।"

श्रीपाल-मैना सुन्दरी—

समस्त जैन शाखाओ मे श्रीपाल और उसकी पत्नी मैना सुन्दरी की कथा प्रसिद्ध है।

श्रीपाल की बाल्यावस्था में ही उसके पिता राजा सिंहरथ की मृत्यु हो गई। श्रीपाल के चाचा ने तुरन्त राज्य पर अधिकार कर लिया और श्रीपाल की मां मन्त्रियो की सहायता से अपनी और अपने पुत्र की जान बचाने के लिए निकल भागी। जगलों मे भटकते-भटकते श्रीपाल को कुष्ट रोग हो गया। किसी तरह उज्जैन नगरी मे माता-पुत्र पहुचे।

उज्जैन के राजा के दो पुत्रिया थी—सुरसुन्दरी और मैना सुन्दरी। सुरसुन्दरी हर बात मे अपने पिता का झूठा समर्थन करके लाभ उठा लेती थी, जबकि मैना सुन्दरी पिता का आदर करते हुए भी सत्य का ही समर्थन करती थी।

एक बार राजा ने भरी सभा मे अपनी दोनों बेटियों को बुलाया और पूछा—"तुम्हे सब प्रकार के सुख देने वाला कौन है?"

सुरसुन्दरी ने उत्तर दिया, "पूज्य पिताजी, मैं जो कुछ भी हू, आपकी ही कृपा से हू। आप ही मेरे भाग्य विधाता है।" इस उत्तर से राजा का अहकार तुष्ट हुआ और उसने हर्ष प्रकट किया।

अब मैना सुन्दरी को उत्तर देना था। उसने कहा, "पिताजी, मैं जो कुछ भी हू, अपने पूर्वजन्म के शुभाशुभ कर्मों के कारण हू। आप भी जो कुछ हैं अपने शुभ कर्मों के कारण हैं। मेरा और आपका पुत्री-पिता का नाता तो निमित्त मात्र है।"

इस उत्तर से पिता-राजा को बहुत गुस्सा आया। राजा ने सुरसुन्दरी का विवाह एक राजकुमार से किया और उसे बहुत अधिक धन-सम्पत्ति देकर विदा किया।

मैना सुन्दरी का विवाह कुष्ट रोगी श्रीपाल से किया गया और दहेज में कुछ नहीं दिया गया। राजा ने कहा—"मैना सुन्दरी अब देख अपने कर्मों का फल। अपनी किस्मत को बदलकर दिखाना।"

मैना सुन्दरी ने विनयपूर्वक अपने पिता से कहा, "पिताजी, मैं आपको दोष नहीं देती हू। मेरे भाग्य मे होगा तो अच्छा समय आएगा ही। मैं धर्म पर और महामन्त्र पर अटूट श्रद्धा रखती हू।

बस मैना सुन्दरी ने अपने पति की पूरी सेवा करना प्रारम्भ कर दिया। वह नित्यप्रति महामन्त्र का जाप करने लगी और भगवान के गन्धोदक से पति को चर्चित भी करने लगी। पति के समीप बैठकर महामन्त्र का पाठ करती रही। धीरे-धीरे पति श्रीपाल का कुष्ट रोग समाप्त हो गया। वह परम सुन्दर व्यक्ति बन गया। उसके मन्त्रियो ने प्रयत्न करके उसका पता लगाया। अन्तत श्रीपाल को उसका राजा पद प्राप्त हुआ।

महामन्त्र के विषय मे निजी अनुभव—

अब तक हमने कतिपय पौराणिक कथाओ के आधार पर महामन्त्र णमोकार के माहात्म्य एव प्रभाव कीए क भव्य झलक देखी। अब और अधिक प्रामाणिकता की तलाश मे हम अपने ही युग के सहजीवी-समकालीन व्यक्तियो के कुछ महामन्त्र सम्बन्धी अनुभव प्रस्तुत कर रहे हैं—

1 घटना 13-11-1985 के प्रात काल की है। सम्पूर्ण तमिलनाडु गत दस दिनो से अतिवृष्टि की प्रलयकारी चपेट मे था। मद्रास नगर का लगभग एक चौथाई भाग जलमग्न था। मैं मद्रास नगर के ही एक भूखण्ड जमीन-पल्लवरम् मे रहता हू। 13 11-1985 को प्रात. होते-होते मेरा समस्त मुहल्ला खाली हो गया। लोग घर छोडकर चले गए। सभी के घरो में 4-5 फुट पानी आ गया था। 3-4 किलोमीटर तक पानी ही पानी भरा हुआ था। मेरे घर में दरवाजे की चौखट तक पानी आ चुका था। सडक से लगभग 4 फुट ऊची मेरी नीव है। तीन-चार इच पानी और बढता तो मेरे घर मे पानी आ जाता। मेरी पत्नी और पुत्री की घबराहट बढती ही जा रही थी। मैंने कहा, थोड़ी देर तो धैर्य रखो, कुछ न कुछ होगा ही।

मैं चुपचाप भीतर के कमरे मे बैठकर महामन्त्र णमोकार का पाठ करने लगा। लगभग 15 मिनट के बाद सहसा पानी बरसना बन्द हुआ। धीरे-धीरे भरा हुआ पानी भी घटने लगा। घर भर मे अपार शान्ति छा गयी और उल्लास भी। यह मेरे जीवन में महामन्त्र का सबसे बडा उपकार है। समस्त मुहल्ले को राहत मिली। महामन्त्र के अतिरिक्त मानवीय शक्ति क्या कर सकती थी ?

2. 'जैन दर्शन' पत्रिका के वर्ष 3 अंक 5-6 जखोरा (ग्राम) जिला झासी (उत्तर प्रदेश) निवासी अब्दुल रज्जाक मुसलमान ने महामन्त्र की महिमा का स्वानुभव प्रकाशित कराया है। इसका उल्लेख डॉ० नेमीचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य ने अपनी पुस्तक 'मगल मन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन' में भी किया है।

वह अक्षरशः इस प्रकार है--"मैं ज्यादातर देखता या सुनता हूं कि हमारे जैन भाई धर्म की ओर ध्यान नही देते। और जो थोडा बहुत कहने-सुनने को देते भी हैं तो वे सामायिक और णमोकार मन्त्र के प्रकाश से अनभिज्ञ हैं। यानी अभी तक वे इसके महत्त्व को नही समझते हैं। रात-दिन शास्त्रों का स्वाध्याय करते हुए भी अन्धकार की ओर बढते जा रहे हैं। अगर उनसे कहा जाए कि भाई, सामायिक और णमोकार मन्त्र आत्मा मे शान्ति पैदा करने वाले और आए हुए दु खो को टालने वाले हैं। तो वे इस तरह से जवाब देते हैं कि यह णमोकार मन्त्र तो हमारे यहा के छोटे-छोटे बच्चे भी जानते हैं। इसको आप हमे क्या बताते हैं ? लेकिन मुझे अफसोस के साथ लिखना पड रहा है कि उन्होंने सिर्फ दिखावे की गरज से बस मन्त्र को रट लिया। उस पर उनका दृढ विश्वास न हुआ और न वे उसके महत्त्व को ही समझे हैं। **मै दावे के साथ कह सकता हूं कि इस मन्त्र पर श्रद्धा रखने वाला हर मुसीबत से बच सकता है क्योंकि मेरे ऊपर से ये बातें बीत चुकी हैं।**

मेरा नियम है कि जब मैं रात को सोता हू तो णमोकार मन्त्र को पढता हुआ सो जाता हू। एक मरतबा जाड़े की रात का जिक्र है कि मेरे साथ चारपाई पर एक बडा साप लेटा रहा, पर मुझे उसकी खबर नहीं। स्वप्न मे जरूर ऐसा मालूम हुआ जैसा कि कह रहा हो कि उठ साप है। मैं दो-चार मरतबे उठा भी और उटकर लालटेन जलाकर नीचे ऊपर देखकर फिर लेट गया, लेकिन मन्त्र के प्रभाव से, जिस ओर साप लेटा था, उधर से एक मरतबा भी नही उठा। जब सुबह हु ा, मैं उठा और चाहा कि बिस्तर लपेट लू, तो क्या देखता हू कि बडा मोटा साप लेटा हुआ है। मैने जो पल्ली खीची तो वह झट उठ बैठा और पल्ली के सहारे नीचे उतरकर अपने रास्ते चला गया। यह सब महामन्त्र णमोकार के श्रद्धापूर्ण पाठ का ही प्रभाव था जिससे एक विषैला सर्प भी अनुशासित हुआ।

दूसरे अभी दो-तीन माह का जिकर है कि जब मेरी बिरादरी वालों को मालूम हुआ कि मैं जैन मत पालने लगा हूं, तो उन्होंने एक सभा की, उसमे मुझे बुलाया गया। मै जखोरा से झासी जाकर सभा में शामिल हुआ। हर एक ने अपनी-अपनी राय के अनुसार बहुत कुछ कहा-सुना और बहुत से सवाल पैदा किए, जिनका कि मैं जवाब भी देता गया। बहुत से महाशयो ने यह भी कहा कि ऐसे आदमी को मार डालना ठीक है। अपने धर्म से दूसरे धर्म में, यह न जाने पाए। अन्त मे सब चले गए। मैं भी अपने घर आ गया। जब शाम का समय हुआ—यानी सूर्य अस्त होने लगा तो मैंने सामायिक करना आरम्भ किया और जब सामायिक से निश्चिन्त होकर आखे खोली तो देखता हू कि एक बड़ा साप मेरे आस-पास चक्कर लगा रहा है और दरवाजे पर एक बर्तन रखा हुआ मिला, जिससे मालूम हुआ कि कोई इसमे बन्द करके छोड गया है। छोडने वाले की नीयत एक मात्र मुझे हानि पहुचाने की थी।

लेकिन उस साप ने मुझे नुकसान नही पहुचाया। मै वहा से डरकर आया और लोगो से पूछा कि यह काम किसने किया है, परन्तु कोई पता न लगा। दूसरे दिन जब सामायिक के समय पडोसी के बच्चे को साप ने डस लिया तब वह रोया और कहने लगा कि हाय मैंने बुरा किया कि दूसरे के वास्ते चार आने देकर जो साप लाया था, उसने मेरे बच्चे को काट लिया। बच्चा मर गया। पन्द्रह दिन बाद वह आदमी भी मर गया। देखिए सामायिक और णमोकार मन्त्र कितना जबरदस्त स्तम्भ है कि आगे आया हुआ काल भी प्रेम का बर्ताव करता हुआ चला गया।"

'तीर्थंकर' पत्रिका के णमोकार मन्त्र विशेषाक-2, जनवरी 1981 से कतिपय उद्धरण प्रस्तुत हैं। इन उद्धरणो से कुछ प्रामाणिक साधुओ, मुनियो, विद्वानो एव गृहस्थो की प्रखर स्वानुभूतियो की जानकारी मिलती है--

1 प्यास शान्त हुई— स्व० गणेश प्रसाद जी वर्णी जब दूसरी बार सम्मेद शिखर की यात्रा पर गए, तब परिक्रमा करते समय उन्हे बडी जोर को प्यास लगी। उनका चलना मुश्किल हो गया। वे णमोकार मन्त्र का स्मरण करते हुए भगवान को उलाहना देने लगे कि प्रभो,

शास्त्रों में ऐसा कहा गया है कि सम्मेद शिखर की वंदना करने वाले को तिर्यंच/नरक गति नही मिलती। प्यास के कारण यदि मैं आर्तभाव से मरूंगा तो तिर्यच गति में जाऊगा, मेढक बनूगा, क्या शास्त्र में लिखा मिथ्या हो जाएगा ? थोडी देर बाद एक यात्री उधर से निकला और उसने बताया कि पास ही मे एक तालाब है। वर्णीजी वहा गए, पास में छन्ना था ही, पानी छानकर पिया। प्यास शान्त हो गयी। याद आया कि पहले भी उन्होंने यहा परिक्रमा की थी, तब तो यह तालाब था नही। गौर से देखने पर न तो वहा आस-पास आगे-पीछे वह यात्री था, न तालाब, लेकिन प्यास अब बुझ गयी थी और परिक्रमा में उत्साह आने लगा था। —सिघई गरीब दास जैन (64 वर्ष) कटनी (म० प्र०)

2 णमोकार मन्त्र को मैं अपने जीवन का मूल-मन्त्र मानता हू। जब कभी मुझे ऐसा लगता है कि मैं किसी कठिनाई में फस गया हू, उस समय यह मन्त्र मुझे बडी शक्ति देता है। मैं ऐसा मानता हू कि जैसे कही कोई विद्युत् कौंध जाती हो, कोई इलेक्ट्रिक वेव आकर मिल जाती हो, उसी तरह से मेरे मानस पर भीतर और बाहर जब मैं देखता हू, इस मन्त्र का ही प्रभाव मानता हू।

—देवेन्द्र कुमार शास्त्री, नीमच (म० प्र०)

3 **अद्भुत प्रभाव/महान् लाभ**—इस मन्त्र का जाप करते समय अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है। मैं एक सास में जप करता हूं। मैंने जीवन के उन क्षणो में भी जप किया है जब विघ्न-बाधाओ की घटाएं उमड-घुमडकर छायी थी। पर जाप करते ही दाक्षिणात्य पवन की तरह वे कुछ ही क्षणो में नष्ट हो गयी थी।

जीवन मे मैं शताधिक बार इस मन्त्र का अद्भुत प्रभाव देख चुका हू। —देवेन्द्र मुनि शास्त्री (49 वर्ष), उदयपुर

4. **अनुभूति अभिव्यक्ति से परे**—इसके जाप से मन मे शान्ति और एकाग्रता की जो अनुभूति होती है, वह अभिव्यक्ति से परे है। जब भी जीवन में बाधाएं आयी, उस समय प्रस्तुत मन्त्र के जाप से वे उसी तरह नष्ट हो गयी और ऐसा लगा कि सूर्योदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है। —राजेन्द्र मुनि (26 वर्ष) उदयपुर

5. **मन्त्रोच्चारण का प्रभाव**—मन्त्रोच्चार से चित्त में प्रसन्नता, परिणामों में मग्नता और निर्मलता आती है। पर्वत की चोटी पर,

एकान्त मे, रात्रि के समय भय की परीक्षा हेतु मैंने इस मन्त्र का ध्यान-मनन-चिन्तन किया। परिणामस्वरूप मैंने अपार निर्भयता और शान्ति का अनुभव किया।

एक बार मेरे कमरे के पास एक कुत्ता मरणासन्न था, छटपटा रहा था, एक श्रावक ने मुझे बुलाया। मैंने उस कुत्ते के कान में 10 मिनट तक मन्त्रोच्चार किया, उस मरणासन्न कुत्ते की आखे खुल गयी। कुत्ता स्वस्थ होकर भाग गया।

इसी प्रकार 10-11 वर्षीय बालक को 105-106 डिग्री बुखार था। डाक्टर यह कहकर चले गए कि अब यह कुछ घण्टो का ही मेहमान है। मुझे मालूम हुआ। मैने उस बच्चे के सिर पर हाथ फेरा, साथ ही बीस मिनट तक णमोकार मन्त्र का उच्चारण उसके कान मे धीरे-धीरे करता रहा। बालक सहसा हसने लगा। बच्चे का बुखार सहसा उतर गया। डाक्टर आश्चर्य मे पड गये।

6 एकाग्रता और शान्ति की प्राप्ति—णमोकार मन्त्र के जाप से मुझे प्राय एकाग्रता प्राप्त होती है। शान्ति भी, लेकिन वह कभी-कभी यन्त्रवत् होती है। मैने इस मन्त्र का जाप रोग में, विपत्ति के समय, कभी-कभी गलत काम करने से उत्पन्न भय, बदनामी को टालने के लिए भी सकट के समय किया है जिसका फल निकला है—अब भविष्य मे ऐसा काम नही करे।

दो विचित्र एवं विपरीत अनुभव—

7. विघ्न निवारण इसका उद्देश्य नही—मन्त्रोच्चार के क्षणों में मै एकाग्रता चाहता हू, पर मन अपना काम करता है और जीभ अपना काम करती है। दोनो में ताल-मेल नहीं रहता। विघ्न-बाधा, अस्वास्थ्य आदि के निवारण के उद्देश्य से मैने कभी इसका जाप नहीं किया। इस मन्त्र का यह उद्देश्य है।

—डॉ देवेन्द्र कुमार जैन (55 वर्ष) इन्दौर

8. दिशा-दर्शन—इस मन्त्र के जाप से एकाग्रता और शान्ति का अनुभव होता है। हर कठिन परिस्थिति मे यही सहारा रहा है। इसमे मनोबल बढा है। परिणाम की मन्त्र जाप से अपेक्षा नही की, क्योकि यह दृढ़ विश्वास है कि सुख-दु ख पूर्व जनित कर्मों का फल है और वह भोगना ही है। इसके स्मरण से शान्ति के परिणामस्वरूप कार्य करने

की राह मिली। कुछ समय से नियमित जाप बन्द हो गया; फिर भी श्रद्धा के कारण यदाकदा जपता हूं। आश्चर्यजनक अनुभव हो रहा है कि जिस-जिस दिन मैं इस मन्त्र का जाप करता हू, कोई न कोई अप्रत्याशित सकट आ जाता है। —डॉ० मागीलाल कोठारी (51 वर्ष) इन्दौर

मथितार्थ—

इस सम्पूर्ण निबन्ध का आधार भक्तो का महामन्त्र णमोकार पर अटूट विश्वास है—तर्कातीत शकातीत विश्वास है। उनके मन्त्र सम्बन्धी अनुभव तार्किको और नास्तिको को मिथ्या अथवा आकस्मिक लग सकते हैं।

मै केवल इतना ही कहना चाहता हू कि हम मनोविज्ञान और अध्यात्म को तो मानते ही हैं। कम से कम मानसिकता और भावनात्मकता को तो मानते ही हैं। साहित्य के शृंगार, करुण, वीर, रौद्र आदि नव रसों को भी अपने जीवन मे घटित होते देखते ही हैं। यह सब मूलत और अन्तत हमारे मनोजगत् के अर्जित एव सर्जित भावों का ही संसार है।

मन्त्रो को और विशेषकर इस महामन्त्र को यदि हम पारलौकिक शक्ति से न भी जोड़ें तो भी इतना तो हमे मानना ही होगा कि हमे चित्त की स्थिरता, दृढता और अपराजेयता के लिए स्वय में ही गहरे उतरना होगा और दूसरों के गुणों और अनुभवो से कुछ सीखना होगा। बस महामन्त्र से हम स्वयं की शक्तियों को अधिक बलवती एव चैतन्य युक्त बनाने की प्रेरणा पाते हैं। मन्त्र हमारा आदर्श है—हमारी भीतरी शक्तियो को जगाने और क्रियाशील बनाने वाला।

हम अपने नित्यप्रति के संसार मे जब किसी बीमारी, राजनीतिक सकट, शीलसकट, पारिवारिक सकट एव ऐसे ही अन्य सकटो से घिर जाते हैं और घोर अकेलेपन का, असहायता का अनुभव करते हैं, तब हम क्या करते है? रोते है, चीखते हैं और कभी-कभी घुटकर आत्महत्या भी कर लेते है। या फिर राक्षस भी बन जाते हैं। पर ऐसी स्थिति मे एक और विकल्प है अपने रक्षकों और मित्रों की तलाश। अपनी भीतरी ऊर्जा की तलाश। हम मित्रों को याद करते हैं, पुलिस की सहायता लेते हैं—आदि-आदि। इसी अकेलेपन के सन्दर्भ में सहायता और आत्म-जागरण की तलाश में हम अपने परम पवित्र ऋषियों,

मुनियों एव तीर्थकरों के महान् कार्यों और आदर्शों से प्रेरणा लेते हैं। मन्त्र तो अन्ततः अनादि अनन्त हैं। तीर्थंकरो ने भी इनसे ही अपना तीर्थ पाया है। जब हमे किसी मगल की, किसी लोकोत्तम की शरण लेनी है, तो स्वाभाविक है कि हम महानतम को ही अपना रक्षक और आराध्य बनाएगे और हमारा ध्यान—हमारी दृष्टि महामन्त्र णमोकार पर ही जाएगी।

स्वय की सकीर्णता और सांसारिक स्वार्थपरता को त्यागकर हमे अपने ही विराट् मे उतरना होगा—तभी महामन्त्र से हमारा भीतरी नाता जुडेगा। महामन्त्र तक पहुचने के लिए हमे मन्त्र (शुद्ध-चित्त) तो बनाना ही होगा। अन्तत इस महामन्त्र के माहात्म्य एव प्रभाव के विषय मे अत्यन्त प्रसिद्ध आर्षवाणी प्रस्तुत है—

"हरइ दुहं कुणइ सुहं, जणइ जसं सोसए भव समुद्द।
इह लोए पर लोए, सुहाण मूलं णमुक्करो॥"

अर्थात् यह नवकार मन्त्र दुखो को हरण करने वाला, सुखो का प्रदाता, यशदाता और भवसागर का शोषण करने वाला है। इस लोक और परलोक मे सुख का मूल यही नवकार है।

"भोयण समये समणे, वि बोहणे-पवेसणे-भये-बसणे।
पंच नमुक्कार खलु, समरिज्जा सव्वकालंपि॥"

अर्थात भोजन के समय, सोते समय, जागते समय, निवास स्थान मे प्रवेश के समय, भय प्राप्ति के समय, कष्ट के समय इस महामन्त्र का स्मरण करने से मन वांछित फल प्राप्त होता है।

महामन्त्र णमोकार मानव ही नही अपितु प्राणी मात्र के इहलोक और परलोक का सबसे बडा रक्षक एवं निर्देष्टा है। इस लोक में विवेकपूर्ण जीवन जीते हुए मानव अपना अन्तिम लक्ष्य आत्मा की विशुद्ध अवस्था इस मन्त्र से प्राप्त कर सकता है—यही इस मन्त्र का चरम लक्ष्य भी है।

"जिण सासणस्स सारो, चवुरस पुव्वाण जे समुद्धारो।
जस्स मणे नव कारो, संसारो तस्स किं कुणइ।"

अर्थात् नवकार जिन शासन का सार है। चौदह पर्व का उद्धार है। यह मन्त्र जिसके मन मे स्थिर है संसार उसका क्या कर सकता है, अर्थात् कुछ नही विगाड़ सकता। □□□